ओ३म्

तत्सत्

ब्रह्म उपासना

अर्थात्

द्विजातियों का नित्यकर्म

प्रथम भाग

जिसको

कर्नल पं० विश्वनाथोपाध्याय (Retired Kashmir Army) श्री दुर्गासदन, सराय गोवर्धन, बनारस ने द्विजातियों के लाभार्थ श्री मुः कामता प्रसाद जी श्रीवास्तव्य C 3/7 कालीमहल, काशी द्वारा लिखाकर प्रकाशित कराया।

प्रथम संस्करण १००० | संवत् १९८८ | मूल्य ।-)

मूल्य देने में असमर्थ श्रद्धालु व्यक्तियों को धर्मार्थ भी उपरोक्त पतेपर मिलेगी।

श्री परमात्मने नमः ।

शान्ताकारं भुजग शयनं पद्मनाभं सुरेशं,
विश्वाधारं गगनसदृशं मेघवर्णं शुभाङ्गम् ।
लक्ष्मीकान्तं कमलनयनं योगिभिर्ध्यानगम्यं,
वंदे विष्णुं भव भय हरं सर्व लोकैक नाथम् ॥१॥
यं ब्रम्हा वरुणेन्द्र रुद्र मरुतः स्तुन्वंति दिव्यैः स्तवै
र्वेदैः साङ्ग पद क्रमोप निषदैर्गायन्ति यं सामगाः ।
ध्यानावस्थित तद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो,
यस्यान्तं न विदुः सुरा, सुरगणा देवाय तस्मै नमः ॥

॥ ॐ तत्सत ब्रह्म ॥

मङ्गलाचरण

ॐ ॥ शंनोमित्रः शंवरुणः शंनो भवत्वर्यमा ।
शं नो इन्द्रोबृहस्पतिः शंनो विष्णुरु रुक्रमः ॥
नमो ब्रह्मणे । नमस्ते वायो । त्वमेव प्रत्यक्षं
ब्रह्मास्मि त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि ।
ऋतं वदिष्यामि । सत्यवदिष्यामि । तन्मामवतु ।
वद्धक्तारमवतु । अवतुमाम् । अवतु वक्तारम् ।
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ (तैत्तिरीयोपनिषत्)

स ब्रह्मा स शिवः सेन्द्रः सोऽक्षर. परमः स्वराट् ।
स एव विष्णुः स प्राणः स कालोऽग्निः स चन्द्रमाः॥
स एव सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यं सनातनम् ।
ज्ञात्वा तं मृत्युमत्येति नान्यः पन्था विमुक्तये ॥९॥
सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
संपश्यन्ब्रह्म परमं याति नान्येन हेतुना ॥१०॥
आत्मानमरणिं कृत्वा प्रनवं चोत्तरारणिम् ।
ज्ञाननिर्मथनाभ्यासात्पापं दहति पण्डितः ॥
(कैवल्योपनिषत् प्रथमखण्ड)

भावार्थ

हे मित्र (सूर्य्य). वरुण, आर्य्यमा, इन्द्र, वृहस्पति तथा विष्णु आदि समस्त देवग ! मेरा कल्याण कीजिये। हे ब्रह्म ! आपको मेरा नमस्कार है। हे वायु ! आप को मेरा नमस्कार है। आप ही प्रत्यक्ष ब्रह्म हैं, और आप ही को हम प्रत्यक्ष ब्रह्म कहते हैं। वाणी और शरीर द्वारा निश्चयात्मक बुद्धि जो निश्चय करती है उसको सत्य कहते हैं। इसी कारण से हे भगवन ! वह ऋत रूपी सत्य आप ही के आधीन है अतएव (मैं ऋत कहता हूं)। सत्य कहता हूँ। आप मेरी रक्षा करें। मेरे वक्ता की रक्षा करें। मेरी रक्षा कीजिये और मेरे वक्ता (आचार्य्य) की भी रक्षा कीजिये। हे ॐ रुपी परमात्मा ! मेरा कल्याण होवै, मेरा कल्याण होवै, मेरा कल्याण होवे ॥ (तैत्तिरीयोपनिषत्)

हे भगवन् ! आप ही ब्रह्मा, शिव, इन्द्र, अक्षर, परमस्वराट, विष्णु, प्राण, काल (धर्मराजचित्रगुप्त), अग्नि, और चन्द्रमा-स्वरूप हैं ॥ ८ ॥

हे भगवन् ! आपही सम्पूर्ण भूतों में भूत काल में थे, वर्तमान में हैं, और भविष्यत में होंगे, और ऐसाही सनातन से होता चला आ रहा है। हे भगवन ! जो प्राणी आप को इस भाव से जान लेता है वह मुक्त हो जाता है, और कोई दूसरा उपाय मुक्ति प्राप्त करने के लिये नहीं है ॥ ९ ॥

आत्मा ही सर्व भूतों में है, और समस्त भूत आत्मा हीं में हैं। इस प्रकार समान दृष्टि वाले महात्मा लोग परब्रह्मपरमात्मा की कृपा से परम्पद को प्राप्त होते हैं। जो प्राणी गण शरीर त्याग करते समय तक प्रणव (ॐ) की उपासना निश्चय करके करते हैं वह ज्ञानी पण्डित जन अपने समस्त पापों को ज्ञानरुपी अग्नि में भस्म करके मुक्त हो जाते हैं।

भूमिका

पर ब्रह्म परमात्मा के चरण कमलों में इस किंकर का कोटानु कोटवार नमस्कार है जिसके असीम कृपा से यह शुभ अवसर प्राप्त हुआ है कि आप सब सज्जनों तथा धुरन्धर पण्डितों की सेवा में यह "ब्रह्म उपासना" नाम की छोटी सी पुस्तक उपस्थित करके प्रार्थना करता हूँ कि इसमें जो कुछ त्रुटियां किसी कारण वश रह गई हों। उनको आप स्वयं सुधार कर मुझ को सूचित करने की कृपा करैं जिसमें इसके दूसरे संस्करण में सुधार कर दिया जावे। इस पुस्तक के लिखने की आवश्यक्ता यह हुई कि सभी द्विजगण अथवा द्विजेन्द्र ब्राह्मण गण महामहोपाध्याय अथवा साहित्याचार नही हैं। असंख्य ग्रामनिवासी ब्राह्मणों की सन्तानैं गायत्री मंत्र का अर्थ तक नहीं जानते। केवल गले में किसी प्रकार से यज्ञोपवीत डाललेनाहीं परम कर्त्तव्य समझते हैं। यहांतक अनभिज्ञ हैं कि संध्यादिक और पंचमहायज्ञोंके करने से क्या लाभ है और न करने से क्या हानि है:—

एकाक्षरं परं ब्रह्म प्राणायामाः परंतपः।
सावित्र्यास्तु परं नास्ति मौनात्सत्यं विशिष्यते॥

(मनु–२–८३)

क्षरंति सर्वा वैदिक्यो जुहोतियजातिक्रियाः।
अक्षरं त्वक्षरं ज्ञेयं ब्रह्म चैव प्रजापतिः॥

(मनु अ० २–८४)

भावार्थ।

"ॐ" यह एक अक्षर परब्रह्मकी प्राप्तिका कारण होने

से अक्षय ब्रह्म है, और प्राणायाम परम तप है, और कोई मंत्र नही है । मौनव्रत धारण करने से सत्य श्रेष्ठ है ॥ ८३ ॥ वेद मे वर्णन किये हुये होम, यज्ञादिक समस्त क्रियाओं का नाश होजाता है । पर प्रणवरूपी अक्षयब्रह्म जो प्रजाओं का अधिपति है उसका नाश किसी कालमें भी नहीं होता । इसलिये इसकी उपासना करना परम आवश्यक है। (मनुः अ० २-८४)

पूर्वां संध्यां जपंस्तिष्ठन्नैशमेनो व्यपोहति ।
पश्चिमां तु समासीनो मलंहन्ति दिवाकृतम् ॥

(मनु अ०-२-१०२)

नतिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम् ।
स शूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद्द्विजकर्मणः ॥

(मनु अ०-२-१०३)

योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम् ।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशुगच्छति सान्वयः ॥

(मनु अ०-२-१६८)

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम् ।
होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ॥

(मनु अ०-३-७०)

पञ्चैतान्यो महायज्ञान्न हापयति शक्तितः ।
सगृहेऽपि वसान्नित्यं सूनादोषैर्न लिप्यते ॥७१॥

देवतातिथिभृत्यानां पितॄणामात्मनश्चयः ।
नानिर्वपति पञ्चानामुच्छ्वसन्न स जीवति ॥

(मनु अ०-३-७२)

भावार्थ

प्रातःकाल की संध्या करते समय सूर्य्य उदयतक गायत्री अथवा सावित्री जाप करना चाहिये । और सायंकाल में जब तक नक्षत्र न दिखलाई पड़े उस समय तक जप करना चाहिये । प्रातःकाल की संध्या से रात्रि के पाप दूर होजाते हैं और सायंकाल की संध्या से दिनके पाप नष्ट होजाते हैं ।

(मनु अ०-२-१०१, १०२)

जो प्रातःकाल और सायंकाल में संध्या नहीं करता उसका वहिष्कार शूद्र के समान करना चाहिये और द्विजके कर्म से तथा सत्कार से बाहर करने योग्य है ॥

(मनुः अ०-३-१०३)

जो द्विज वेद नहीं पढ़ता और अन्य विद्या मे परिश्रम करता है वह जीता हुआ भी पुत्र पौत्रादिक समेत शीघ्र शूद्र-त्वको प्राप्त होता है । (मनुः अ० ३-१६८)

वेदका पढ़ना पढ़ाना ब्रह्मयज्ञ है (१) तर्पण करना पितृयज्ञ (२) अग्नि मे होम करना देवयज्ञ है (३) भूतोंको बलि देना अर्थात् गो ग्रास, स्वान, और कौआ को ग्रासदेनां भूत यज्ञ है (४) और अभ्यागत का सत्कार करना नरयज्ञ है।

(मनुः अ० ३-७०)

जो द्विज इन पंचमहायज्ञों का करना यथा शक्ति नहीं छोड़ता, वह घरमें रहता हुआ भी निष्पाप रहता है । (७१) जो द्विज ऊपर वर्णन किये हुये महायज्ञों को नहीं करता है वह जीता हुआ मृतक के समान है । (मनुः अ० ३-७२)

हे श्रेष्ठ द्विजो तथा द्विजेन्द्र ब्राह्मण सज्जनों ज़रा सोचो तो सहा कि धर्मशास्त्र की आज्ञा आपके लिये क्या है और आपलोग क्या कर रहे हैं।

यह हमने माना कि कलि के प्रभाव से आप लोगों की यह दुर्दशा होरही है और यह भी माना कि समस्त धर्म कृतयुग के लिये था। जैसा कि पराशर माधव में लिखा हैः—

सर्वे धर्माः कृतेजाताः सर्वे नष्टा कलौयुगे ।
चातुर्वर्णसमाचारं, किञ्चितसाधारणं वद ॥ १६ ॥
युगेयुगेचये धर्मास्तत्र तत्र च येद्विजाः ।
तेषांनिन्दानकर्तव्या युगरूपाहिते द्विजाः ॥२३॥

(पाराशरसंहिता पृष्ठ ८० १२८)

पर आप का भी तो कुछ कर्त्तव्य है न। यदि उसी को पालन कीजिये तो लोक परलोक दोनों सुधर सकता है। हे द्विजेन्द्र श्रेष्ठ ब्राह्मण सज्जनों परमात्मा ने समाज के सुधार का भार आप ही पर रक्खा है। पर बड़े कष्ट के साथ लिखना पड़ता है कि आप व्यसनों तथा इन्द्रियों के दास बन दिनों दिन व्यग्र होकर फिरा करते हैं तिस पर भी आप किसी एक भी इन्द्रिय को तृप्त न कर सके और न कर सकते हैं। यदि शान्ति होसकती है तो इन्द्रियों के निग्रह और व्यसनों के त्याग से जैसा कि आपके पूर्वज वैदिक ऋषिगण करते थे।

ब्राह्मणेषु च विद्वांसो विद्वत्सु कृतबुद्धयः।
कृत बुद्धिषु कर्त्तारः कर्तृषु ब्रह्मवादिनः ॥

(मनु० अ०-१-९७)

उत्पत्तिरेव विप्रस्य मूर्तिर्धर्मस्य शाश्वती ।
स हि धर्मार्थमुत्पन्नो ब्रह्म भूयाय कल्पते ॥

(मनु० अ०—१—९८)

ब्राह्मणो जायमानो हि पृथिव्यामधिजायते ।
ईश्वरः सर्वभूतानां धर्मकोशस्य गुप्तये ॥

(मनु० अ०-१-९९)

हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों धर्म शास्त्र ने आप के लिये क्या कर्त्तव्य लिखा है और आप अपने आचरणों की ओर तो ध्यान दीजिये कि आप क्या कर रहे हैं। परमात्मा ने आप का जन्म ब्राह्मणकुल में परोपकार के लिये दिया है, ज़रा ग़ौर तो कीजिये कि वर्तमान काल में आप से जगत का क्या उपकार हो रहा है। ऋग्वेद मंडल १० अनुवाक १० सूक्त १५ में लिखा है किः—

येन केन प्रकारेणकोहिनां मन जीवंति ।
परेषा मुपकारार्थं यज्जीवंति सजीवंति ॥

यदि अब भी आप अपना जीवन पर उपकार में न लगावेंगे तो वह समय बहुत जल्द आया चाहता है कि सर्व साधारण की श्रद्धा आपकी ओर से उठ जावेगी। उस समय पछताना पड़ेगा। इसलिये नम्रतापूर्वक निवेदन है कि अपने तथा अपने समाज का सुधार कीजिये, और कमर कसकर खड़े हो जाइये, और अपने यजामानों का भी सुधार कीजिये नहीं तो अन्त में आपके हाथ में अहङ्कार ही रह जावेगा। अबतक धर्म पुस्तकें संस्कृत भाषा में थीं इसी कारण से

संध्यादिक नैमित्तिक कर्मों का भाषानुवाद कर दिया गया है जिसको अल्पबुद्धिके लोग थोड़ी सी भी श्रम करने से समझ सकते हैं। पंचमहायज्ञ के अवसर पर अग्निहोत्र करना चाहिये इसलिये कामसूक्त का भाषानुवाद करदिया गया है कि यदि उन्ही मंत्रोंद्वारा अग्निमें आहुति दिई जावै तो परमात्मा सम्पूर्ण मनोरथों को पूर्ण करैगा। पंचमहायज्ञ के पश्चात वेदाध्ययन तथा ब्रह्मउपासना करना चाहिये इसी कारण पुरुषसूक्त का भाषानुवाद तथा आध्यात्मिक भाव दर्शाया गया है जिसमें इसके द्वारा बहुत जल्द ब्रह्मज्ञान प्राप्त होसकै। यदि लक्ष्मी प्राप्त करने की इच्छा हो तो ऋग्वेद में वर्णन् किये हुये "श्रीसूक्त" और "रात्रिसूक्त" को अध्यन कीजिये जो इसी पुस्तक में प्रकाशित करादिया गया है। यदि द्विजातिगण आद्योपान्त इस छोटी सी पुस्तक को पढ़ैंगे तो मैं अपने परिश्रम को सुफल समझूंगा और कृतकृत होजाऊंगा।

धन्यवाद

मैं अपना हार्दिक धन्यवाद सराय गोवर्धन काशी निवासी श्रीमान् उपाध्योप नामक श्री पं० द्वारकानाथात्मज कर्नल विश्वनाथ शर्मा (Retired Jammu & Kashmir Army) को दिये बिना नहीं रह सकता जिन्होंने ऐसे उपयोगी पुस्तक के प्रकाशन के कार्य में मुझे पूर्ण सहायता दी। अतएव पंडितजी मेरे धन्यवाद के भागी हैं। ऐसा क्यों न हो जब कि आप के पूर्वज भी वैदिक साहित्य तथा युद्ध विद्या दोनों के आचार्य होते चले आये हैं, अतएव मैं आपको हार्दिक धन्यवाद पुनः पुनः देता हूं। विनीत—

४—४—२६ कामता प्रसाद श्रीवास्तव्य

C ३/७ कालीमहल काशी।

॥ ॐ तत्सत् ब्रह्म ॥

ब्रह्म उपासना

अर्थात्

द्विजातियों का नित्यकर्म्म

अथ सन्ध्योपासनविधि भाषा टीका सहित

प्रथमोऽध्यायः

ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थांगतोपि वा ।
यः स्मरेत्पुंडरीकाक्षं स बाह्याभ्यंतरः शुचिः ॥
(१)

इस मंत्र से जल अपने ऊपर छिड़क कर तीन आचमन करै ।

ॐ केशवायनमः (१) ॐ वासुदेवायनमः (२) ॐ राघवायनमः ॥

गायत्री मंत्र (२)

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्व्वरेण्यं भर्ग्गोदेवस्य धीमहि॥ धियोयोनः प्रचोदयात् ॥ [यजुः अ० ३६-३]

इस गायत्री मंत्र से चोटी में गिरह लगावै । यदि चोटी में गिरह लगी हो तो कोई आवश्यक नहीं ॥

पुनः इसी मंत्र को पढ़कर अपने चारों तरफ जल फेरै ॥

मंत्र (३)

ओ३म् ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत ।
ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः ॥
समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत ।
अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतोवशी ॥
सूर्य्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत ।
दिवंच पृथिवीं चांतरिक्ष मथोस्वः ॥ [ऋ० १०-१२-३९]

मंत्रार्थः—प्रकाशमान परमात्मा से वेद और प्रकृति उत्पन्न हुई। उसने प्रलयरात्रि, जलयुक्तसमुद्र-संवत्सर अर्थात् संवत्सरात्मक सम्पूर्ण काल, समस्तलोक, जगत का स्वामी सूर्य्य और चन्द्रमा, स्वर्ग, पृथिवी, आकाश पूर्व प्रथानुसार विरचा ॥

इस मंत्र से आचमन करै ॥

मंत्र (४)

ओ३म् कारस्य ब्रह्माऋषिर्गायत्री छन्दोग्निर्देवता शुक्लोवर्णः । सर्वकर्म्मारंभे विनियोगः ॥ १ ॥

अर्थ—ओ३म्कार के ऋषि ब्रह्मा हैं, गायत्रीछंद है, अग्निदेवता है, शुक्ल वर्ण है, सब कर्मों के आदि में ओ३म्कार का उच्चारन उचित है। विनियोग, मंत्रों के ऋषि का स्मरण है।

इस मंत्र को पढ़कर जल हाथ से छोड़ देवे।

मंत्र (५)

सप्तव्याहृतीनां प्रजापतिर्ऋषिर्गायत्र्युष्णि
गनुष्टुब्बृहती पंक्तिस्त्रिष्टुप्जगत्यश्छंदांस्यग्निवा-
य्वादित्यबृहस्पति वरुणेंद्रविश्वेदेवा देवता अना-
दिष्टप्रायश्चित्ते प्राणायामे विनियोगः ॥ २ ॥

अर्थ—साती व्याहृतियों के प्रजापति ऋषि हैं। गायत्री, उष्णिक, अनुष्टुप, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप, और जगती ये छन्द हैं। अग्नि, वायु, आदित्य, बृहस्पति, वरुण, इन्द्र विश्वेदेवा ये देवता हैं। प्रायश्चित में इनका विनियोग है ॥ २ ॥

पुनर्वार हाथ में जल लेकर इस द्वितीय विनियोग को पढ़कर जल छोड़ देवे।

मंत्र (६)

गायत्र्या विश्वामित्रऋषिर्गायत्रीच्छंदः सवि-
तादेवताग्निर्मुखमुपनयेनप्राणायामेविनियोगः॥

अर्थ—गायत्रीमंत्र के विश्वामित्रऋषि हैं, गायत्री इसका छंद है, सविता देवता है, अग्नि मुख उपनयन प्राणायाम में विनियोग है॥३॥

पुनः इस तीसरे विनियोगको पढ़ कर जल छोड़ देवै।

मंत्र (७)

शिरसः प्रजापतिर्ऋषिस्त्रिपदागायत्री छंदो
ब्रह्माग्निर्वायुः सूर्यो देवता यजुः प्राणायामे
विनियोगः ॥ ४ ॥

अर्थ—शिरसः मंत्र के ऋषि प्रजापति हैं । त्रिपदागायत्री छंद है । ब्रह्मा अग्नि वायु सूर्य्य देवता यजु है । प्राणायाम में विनियोग है ।

फिर चौथीवार भी चौथे विनियोग को पढ़कर जल छोड़देवे ।

मंत्र (८)

प्राणायाममंत्रः—ॐभूः ॐभुवः ॐस्वः ॐमहः ॐजनः ॐतपः ॐसत्यं ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्यधीमहि ॥ धियोयोनः प्रचोदयात ॥ ॐ आपोज्योतीरसोमृतं ब्रह्मभूर्भुवः स्वरोम् ॥ [तैत्तिरीय प्रपा० १० अनुः १७]

अर्थ (सवितुः) सब स्थावरों, जंगमों के रचने वाले (देवस्य) प्रकाशयुक्त (तत्) तिस (वरेण्यं) प्रार्थना करने के योग्य अर्थात् जो निरंतर सत्पुरुषों से ध्यान किये जाने के योग्य (भर्गः) भजनेवालों के अघों के नष्ट करने वाले तेज का हम (धीमहि) ध्यान करते हैं (यः) जो (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों को शुभ कर्मों में (प्रचोदयात्) लगावै । वह तेज भूः १ भुवः २ स्वः ३ महः ४ जनः ५ तपः ६ सत्यम् ७ जो इन सातों लोकों में व्याप्त है सो तेज (आपः) जलस्वरूप है (ज्योतिः) ज्योतीस्वरूप है (रसः) रस रूप है (अमृतम्) मोक्षरूप है (ब्रह्मभूर्भुवः स्वरोम्) ये सब ब्रह्म हैं ।

पहिले पलथी मार के सावधान होकर आंख मूंद मौन धारण करै। दोनों हाथों के बीच के अंगुली नाक के बांये नथुने पर रख के दबाले और दाहिने नथूने से श्वास धीरे धीरे ऊपर को खींचता जाय और मनमें ऊपर लिखित प्राणायाममंत्रों को पढ़ता जाय। इसके करते समय नाभि में नील कमल के समान श्याम चतुर्भुज विष्णु भगवान के मूर्ति का ध्यान करै। जब तक मंत्र पूरा न हो जाय श्वांस ऊपर को खींचता जाय जब पूरा मंत्र पढ़ चुके तब अंगूठे से दाहिने नासा को भी बंद करलेवे। और श्वास रोककर हृदय में रक्त वर्ण चतुर्मुख ब्रह्मा के मूर्ति का ध्यान करै जब पूरा मंत्र पढ़ चुके तब बायें नासा पर से दोनों अंगुली हटालेवे और दाहिने नासा को अँगूठे से बंद रखे। और बांई नासा से धीरे धीरे श्वास उतारता जाय और मंत्र को पढ़ता जाय और श्वास उतारते समय त्रिपुटी में श्वेत वर्ण स्फटिक समान शङ्कर के मूर्तिका ध्यान करै॥

मंत्र (९)

सूर्य्यश्चेत्यस्यब्रह्मर्षिः प्रकृतिश्छंदः सूर्य्यो-देवता अपामुपस्पर्शने विनियोगः॥

अर्थ—(सूर्य्यश्च) इस मंत्र के ब्रह्मा ऋषि हैं प्रकृतिछंद है। सूर्य्य इसके देवता हैं जल के उपस्पर्शन में विनियोग है। इस विनियोग को पढ़कर जल छोड़ देवै॥

मंत्र १०)

ॐ सूर्य्यश्चमान्युश्चमन्युपतयश्चमन्यु कृते-भ्यः॥ पापेभ्यो रक्षन्तां॥ यद्रात्र्यापापमकार्षं॥ मनसावाचाहस्ताभ्यां पद्भ्यांमुदरेणाशिश्ना॥

रात्रिस्तदवलुम्पतु ॥ यत्किंचिद्दुरितंमयि । इदमहमापोऽमृतयोनौसूर्य्ये ज्योतिषि जुहोमि स्वाहा ॥ (इतिप्रातः) [तैत्तिरीय प्र० १०–अ २९]

अर्थ—सूर्य्या, (मन्यु) यज्ञ (मन्युपतयः) यज्ञपति इन्द्रादि या क्रोधपति इन्द्रियां (मन्युकृतेभ्यः) क्रोधसे किये हुये (पापेभ्यः) पापोंसे (मा) मेरी (रक्षन्तां) रक्षाकरें ॥ अर्थात् मुझको ऐसा क्रोध न हो कि जिसके कारण से मैं अयोग्य काम को करूं (यत्) जो (पापं) पाप मैंने (रात्र्यां) रात्रिमे (मनसा) मन करके (वाचा) वचन करके (हस्ताभ्यां) हाथों करके (पद्भ्यां) पैरों करके (उदरेण) उदर करके (शिश्ना) लिंगेन्द्रिय करके (अकार्षं) किया है (तत्) तिस मेरे पापोंको (रात्रिः) रात्रि (अवलुम्पतु) नष्ट करै (यत्किंचित्) जो कुछ (दुरितं) पाप (मयि) मेरे में हैं (इदं आपः) सो यह जल है इसको (अहं) मैं हृदय कमल के स्थित (अमृत योनौ) अमृत की योनि (ज्योतिषि) ज्योतिःस्वरूप (सूर्य्ये) सूर्य्य में (जुहोमि) हवन करता हूं (स्वाहा) वह पाप नष्ट हो जाय फिर मुझसे नहो ।

इस मंत्र से प्रातः काल के सन्ध्या में आचमन करे ।

मंत्र (११)

अथ सायं सन्ध्या आचमन मंत्रः । अग्निश्चमेति रुद्रऋषिः प्रकृतिश्छन्दोऽग्निर्देवता अपामुपस्पर्शने विनियोगः ॥

(अग्निश्च) इस मंत्र के रुद्र ऋषि हैं प्रकृति छंद है अग्नि देवता हैं जल के उपस्पर्शन में विनियोग है।

इस मंत्र को पढ़कर सायं सन्ध्या के समय जल छोड़ देवै।

मंत्र (१२)

ओ३म् अग्निश्च मामन्युश्च मन्यु पतयश्च मन्युकृतेभ्यः। पापेभ्यो रक्षंतां। यदह्नापापमकार्षं। मनसावाचा हस्ताभ्यां। पद्भ्यामुदरेण शिश्ना। अहस्तदवलुम्पतु। यत्किञ्चिद्दुरितं मयि। इदमहमापोऽमृतयोनौ सत्ये ज्योतिषि जुहोमि स्वाहा॥ इति सायं॥ [तै० प्र० १०-अ० २३]

अर्थ—अग्नि और यज्ञपति इन्द्रादिक अथवा क्रोध और क्रोधपति इन्द्रियां क्रोध से किये हुये मेरे पापों से मेरी रक्षा करैं अर्थात मुझ को ऐसा क्रोध नहो कि जिस के कारण मैं न करने योग्य कामों को करूं। और जो पाप मैंने दिन में मन, वाणी, हाथों, पैरों, उदर लिङ्गेन्द्रिय करके किया हो उस मेरे पापों को दिन नष्ट करे। और जो कुछ पाप मेरे में हैं सो यह जल है इसको मैं सत्य जोतिः परमात्मा के विषय हवन करता हूँ सो वह पाप नष्ट होजाय पुनः मुझ से न हो।

मंत्र (१३)

आपोहिष्ठेत्यादित्र्यृचस्यसिंधुद्वीपऋषि गायत्री छंद आपो देवता मार्जने विनियोगः (१)

अर्थ—ओपोहिष्ठा इत्यादि इनके सिंधुद्वीप ऋषि, गायत्री छंद है जल देवता मार्जन में विनियोग है ।

मंत्र (१४)

ॐ आपोहिष्ठामयो भुवः । [ऋ० १०-१-९]

(१)

अर्थ—हे (आपः) जल (हि) जिस कारण तुम (मयोभुवः) सुख के देनेवाले हो ।

तान ऊर्जे दधातन

(२)

अर्थ—सो (नः) हमें (उर्ज्जे) वलकारक अन्न (दधात) देनेवाला हो ।

महेरणायचक्षसे ।

अर्थ—(महेरणाय) महा (रमणीय) के अर्थात् ब्रह्म के (चक्षसे) दर्शन योग हमे करो ।

(४)

योवः शिवतमोरसः ।

अर्थ—(योवः) जो तुम्हारा (शिवतमोरसः) कल्याण रूप रस है ।

(५)

तस्य भाजयतेहनः

अर्थ—(तस्य भाजयत) तिस रसके भागी (नः) हमें करो जैसे माता लड़के को अपना दूध पिलाकर कल्याण युक्त

करती है वैसे ही तुम भी अपने रस से हमको कल्याण युक्त करो।

(६)

उशतीरिवमातरः।

अर्थ—हे जल (उशतीः) पुत्र सुख के चाहने वाली (मातरइव) माता के समान।

(७)

तस्मा अरंगमामवः॥

अर्थ—(तस्मा अरंगमामवः) तिस तुम्हारे रस से हम सदा तृप्त हों।

(८)

यस्यक्षयायजिन्वथ।

अर्थ—(यस्यक्षयायजिन्वथ) जिस जग के आधार भूत रस के एक अंश से आप जगत को तृप्त करते हैं।

(९)

आपो जन यथा चनः। [ऋ० १०-१-९]

अर्थ—(आपोजन यथाचनः) हे जल आप हमको उस रस के भोगने मे समर्थ करो।

दोनों काल अथवा प्रातः और सायंकाल के संध्या में केवल इतनाही भेद है कि आचमन अलग २ है जैसा कि प्रातः और संध्या आचमन के नाम से लिखा गया है शेष सब विधि दोनों काल के सन्ध्या में एक ही है।

फिर आपो हिष्ठा इत्यादि (१) से (७) मंत्रोंतक अलग २ पढ़कर अपने शिरपर जल छिड़के फिर आठवें मंत्र से पृथिवी पर जल छिड़कै ।

नवे मंत्र से फिर शिर के ऊपर जल छिड़कै ।

मंत्र (१८)

ॐ द्रुपदादिवेति कोकिलो राजपुत्र ऋषि रनुष्टुप्छंदः सौत्रा मण्यवभृथ विनियोगः ।

अर्थ—(द्रुपदादिव) इस मंत्र के कोकिल राजपुत्र ऋषि हैं छंद इसका अनुष्टुप है । सौत्रामणि अवभृथ में विनियोग इसका है ।

हाथ में जल लेके (द्रुपदादिव) इसमंत्र को पढ़कर जल हाथ से छोड़ देवे ।

मंत्र (१६)

ॐ द्रुपदादिव मुमुचानः स्विन्नः स्नातो मलादिव ॥ पूतं पवित्रेणेवाज्य मापःशुन्धन्तु मैनसः । [यजु०-अ० २०-२०]

अर्थ—(द्रुपदादिव मुमुचानः) जिस रीति से पदत्रान से विलग भया पद पवित्र रहता है । जिस प्रकार पसीनाच्छादित शरीर अस्नान करने से पवित्र होता है । और जिस प्रकार घी आग में तपाने से शुद्ध हो जाता है, उसी प्रकार से यह जल मेरे पापों को भस्म करके मुझ को शुद्ध करें ।

जल हाथ में ले इस मंत्र को पढ़ माथे में लगा पृथिव पर छोड़ देवे ।

मंत्र (१७)

अघ मर्षण सूक्तस्याघमर्षण ऋषिरनुष्टुप्छन्दः भाव वृत्तो देवता अश्वमेधावभृथे विनियोगः ।

अर्थ—(अघमर्षण सूक्तके अघमर्षण ऋषि हैं) छंद अनुष्टुप है । देवता भाववृत्त है । इसका विनियोग अश्वमेध अवभृथ में है ।

हाथ में जल ले (अघमर्षण) इस विनियोग को पढ़कर जल हाथ से छोड़ देवे ।

मंत्र (१८)

ॐ ऋतंचसत्यंचाभीद्धात्तपसोध्यजायत । ततोरात्र्यजायत ततः समुद्रोअर्णवः समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत । अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्यमिषतो वशी । सूर्य्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्प यत् ॥ दिवंचपृथिवीं चांतरिक्षमथोस्वः । [ऋ०-१०-१०-३९]

इसमंत्रका अर्थ पहिले लिख चुके हैं ।

हाथ में जल लेकर अपने नासिका से लगाकर (ऋतंच) इन मंत्रों को तीन वार या एकवार पढ़े और चित्त में यह ध्यान करे कि यह जल मेरे शरीर से निकला हुआ मेरा पाप है अपने बांई तरफ छोड़ देवे ।

मंत्र (१९)

अंतश्चरसीति तिरश्चीन ऋषिरनुष्टुप्छंदः आपो देवता अपामुपस्पर्शने विनियोगः ।

अर्थ—(अंतश्चरसि) इस मंत्र के ऋषि तिरश्चीन हैं छंद अनुष्टुप है। देवता जल है। जलके उपस्पर्शन में विनि-योग है।

हाथ में जल लेकर इस मंत्र को पढ़कर छोड़ देवे।

मंत्र (२०)

ॐ अंतश्चरसि भूतेषु गुहायां विश्वतोमुखः । त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कार आपो ज्योती रसोमृतम्

अर्थ—हे जल, तुम सब भूतों में विचरतेहो। इस ब्रह्मांड में सर्वत्र आपकी गति है। आप यज्ञ, वषट्कार, जल, रूप ज्योतिःस्वरूप, रसरूप, और अमृतरूप हो।

हाथ में जल ले इस मंत्र को पढ़ आचमन करे।

गायत्री मंत्र (२१)

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यंभर्गोदेवस्य धीमहि । धियोयोनः प्रचोदयात् । [यजुः अ० ३६-३]

इस मंत्र का अर्थ पहिले लिख चुके हैं।

सूर्य्य के सामने खड़े हो अघ में जल ले दोनों हाथ से एक बार अर्घ देवै।

मंत्र (२२)

उद्वयमित्यस्य प्रस्कण्व ऋषिरनुष्टुप्छंदः सूर्य्योदेवता सूर्य्योपस्थाने विनियोगः ।

(१)

अर्थ—इसमंत्र के ऋषि कण्व, अनुष्टुपछंद और देवता सूर्य्य हैं । सूर्य्य के उपस्थान में विनियोग है ।

मंत्र (२३)

ओ३म् उद्वयन्तमसस्पारिस्वः पश्यन्त उत्तरं देवं देवत्रा सूर्य्य मगन्म ज्ज्योतिरुत्तमम् ।। [यजुःअ०३८–२४]

(२)

अंधकार रूप भूलोक से ऊपर विराजमान स्वर्ग लोक को देखते हुये और सबसे श्रेष्ठ सूर्य्य देवको देखते हुये जो कि देव करके रक्षित हैं उस ज्योति स्वरूप ब्रह्म को मैं प्राप्त होऊँ ।

मंत्र (२४)

उदुत्यमित्यस्य प्रस्कण्व ऋषिरनुष्टुप्छंदः । सूर्य्यो देवता सूर्य्योपस्थाने विनियोगः ॥

(३)

अर्थ—इस मंत्र के ऋषि कण्व हैं । छंद अनुष्टुप है । देवता सूर्य्य हैं । इसका विनियोग सूर्य्य उपस्थान में है ।

मंत्र (२५)

उदुत्यंजात वेदसं देवं वहंति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्य्यम् । [यजुः अ० ७-४१]-[ऋ० १-९-७]

(४)

अर्थ—बुद्धि को बढ़ाने वाली किरण उत्पन्न हुये संसार के कर्म फल को दिखलाने के लिये प्रसिद्ध सूर्य्य देव को ऊपर लिये जाती है ।

मंत्र (२६)

चित्र मित्यस्य कौत्स ऋषिः त्रिष्टुपूछंदः । सूर्य्यो देवता सूर्य्योपस्थाने विनियोगः ॥

(५)

अर्थ—इस मंत्र के ऋषि कौत्स हैं । छन्द अनुष्टुप है । देवता इसके सूर्य्य हैं । इसका विनियोग सूर्य्योपस्थान में है ॥

मंत्र (२७)

ॐ चित्रंदेवानामुदगादनीकञ्चत्तुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आप्राद्यावापृथिवीऽअंतरित्तँ सूर्य्यऽ आत्मा जगतस्तस्थुषश्च। [ऋ० १-१६-१० यजुः अ० ७-४२]

(६)

अर्थ—मित्र, वरुण, और अग्नि देवता के नेत्र रूप (इन तीनों ही के नहीं किन्तु समस्त जगत के नेत्र रूप सर्य्य) जो कि दीप्ति युक्त किरणों का पुन्ज है । जिसकी किरणें स्वर्ग

पृथिवी, आकाश में व्याप्त हो रही हैं। और जो कि स्थावर, जंगम, विश्व का अन्तर्यामी है। ऐसे सूर्य्य उदय हुये, (आश्चर्य यह है कि उदय होते ही रात्रि के अन्धकार को और तारा गणों की ज्योति को हर लेते हैं।)

मंत्र (२८)

तच्चक्षुरित्यस्तरातीतपुर उष्णिकछन्दोदध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः सूर्य्यो देवता सूर्य्योपस्थाने विनियोगः ॥ ७ ॥

(७)

अर्थ—इस मंत्र के अथर्वण ऋषि हैं उष्णिक् छन्द है। देवता इसके सूर्य्य हैं इसका विनियोग सूर्य्योपस्थान में है॥

मंत्र (२९)

ओ३म् तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं शृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात॥ [यजु० अ० ३६-२४]

(८)

अर्थ—जगत के नेत्र रूप देवताओं के हितकारक पूर्व दिशा में उदय हुये। तिनके कृपा से हमारी आँख सौ वर्ष तक अच्छी बनी रहै। और सौ वर्ष तक हमारा जीवन पराये आधीन न रहै। और १०० वर्ष तक हमारी सुनने की शक्ति

बनी रहै और सौ वर्ष तक हमारी बोलने की शक्ति बनी रहै। और सौ वर्ष तक किसी से दीनता न करैं। केवल सौ ही वर्ष तक नहीं किन्तु सौ से भी अधिक वर्ष तक हम देखें, जीवैं, सुनैं, बोलैं और दीनता न करैं।

ऊपर लिख आये हैं कि सूर्य्य के सामने खड़े हो गायत्री मंत्र पढ़ अर्घ देवै। फिर सूर्य्य के सामने मुख करके एक पैर वा एक पैर का पञ्जा केवल पृथ्वी से लगा रहै और दूसरा पैर संपूर्ण टिकारहै। प्रातः सन्ध्या और सायं संध्या में दोनों हाथ मिलाके जिसको पुष्पाञ्जली कहते हैं (उद्धय यहां से लेकर शतं भूयश्च शरदः शतात्) अर्थात् एक से आठ मंत्र लों पढ़ै।

अंगन्यास मत्र (३०)

ॐ हृदयायनमः (१) ॐ भः शिरसे स्वाहा (२) ॐ भुवः शिखायै वषट् (३) ॐ स्वः कवचायहुं (४) ॐ भूर्भुवः नेत्राभ्यां वौषट् (५) ॐ भूर्भुवः स्वः अस्त्रायफट् (६)

इस मंत्र का अर्थ लिख चुके हैं अर्थात् गायत्री मंत्र का अर्थ पूर्व लिख चुके हैं।

(१) मंत्र पढ़कर हृदय में हाथ लगावै (२) मंत्र पढ़कर शिर में हाथ लगावै (३) मंत्र पढ़कर चोटी में हाथ लगावै (४) मंत्र पढ़ कर दोनों भुजाओं में हाथ लगावै (५) मंत्र पढ़कर दोनों नेत्रों में हाथ लगावै (६) मंत्र पढ़कर अपने चारों तरफ चुटकी बजावै इस प्रकार तीन वार करै। इस

तरह इन मंत्रों से स्पर्श करने और मंत्र प्रभाव से यह सब अंग पुष्टि को प्राप्त होते हैं ।

मंत्र (३१)

ॐ तेजोसीति देवा ऋषयः शुक्रं दैवतं गायत्री छन्दो गायत्र्यावाहने विनियोगः ।

अर्थ—इसमंत्र के देवता लोग ऋषि हैं । देवता शुक्र हैं । छंद गायत्री है । इसका विनियोग गायत्री आवाहन में है । इस मंत्र को पढ़ कर गायत्री को आवाहन करै ।

मंत्र (३२)

ॐ तेजोसि शुक्रमस्यमृतमसि धामनामासि प्रियं देवानामनाधृष्टं देवयजनमसि । [यजुः अ० १-३१]

ॐ गायत्र्यस्येकपदी द्विपदी त्रिपदी चतुष्पद्य पदसि नहि पद्यसेनमस्ते तुरीयायदर्शताय पदाय परोरजसे सावदोमाप्रापत ।

[बृहदा० अ० ५ ब्रा० १४ अनुः ७]

अर्थ—हे गायत्रि तुमकांतिकी कारण तेज हो प्रकाशमान हो विनाश रहित हो मनके लगाने की स्थान हो और आपके उपासक को देखकर सब आदमी झुकते हैं । देवताओं की सर्व प्रिय हो और देवताओं के पूजने की साधन स्थान हो ।

हे गायत्रि तुम त्रिलोकी रूप पद करके एक पदी हो । उपासना, ज्ञान, कर्म करके आप द्विपदी हो । प्राण आदि पद करके आप त्रिपदी हो ।

२

सूर्य्य मण्डल के भीतर वर्तमान पुरुष रूप से तुम चतुष्पदी हो । इन्ही चार पदों से आपके उपासक लोग आपको जानते हैं । इससे आप अपद हो दर्शन के योग्य रजो गुण से परे शुद्ध सत्वस्वरूप चतुर्थ पद ब्रह्मा विष्णु शिव इनसे पृथक ब्रह्मस्वरूप या कारण रूप तीन उपाधियों से रहित ईश पद जो आप हैं अतएव आपको नमस्कार है ।

जिस नमस्कार करने से तुम्हारे दर्शन के प्राप्ति में विघ्न करने वाला पाप मुझको न प्राप्त हो ।

इन दो मंत्रों को पढ़कर गायत्री की स्तुति करै और एकाग्रचित्त करके गायत्री मंत्र जो हम पुनर्वार लिखते हैं यथा शक्ति जप करै ।

मंत्र (३३)

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यँ भर्गो देवस्य धीमहि । धियो योनः प्रचोदयात ॐ । [यजुः अ० ३६-३]

मंत्र (३४)

ॐ उत्तमे शिखरे देवि भूम्यां पर्वतमूर्धनि । ब्राह्मणेभ्योऽभ्यनुज्ञाता गच्छ देवि यथासुखम् ॥

अर्थ—पृथिवी पर मेरु पर्वत है और उसके उत्तम चोटी पर गायत्री देवी स्थित हैं । इसलिये हे देवि ब्राह्मण* जो आपके उपासक हैं वह आपके अनुग्रह से प्रसन्न हैं तिनके लिये ज्ञान प्रदान करके अपने स्थान पर पधारिये ।

* (ब्राह्मण) से अभिप्राय द्विजाति से है ।

जब गायत्री मंत्र को जप करलेवे तो ऊपर लिखित मंत्र से गायत्री देविका विसर्जन करै ॥ इति ॥

अथ देवर्षि पितृतर्पणम् ।

अथ तर्पणविधिः प्रारंभ्यते ॥ तत्रादौ संकल्पः ॥
पूर्व्वाभिमुखो भूत्वा सव्येनाचम्य ।

ॐ अपवित्रः पवित्रोवा सर्वावस्थांगतोपिवा ।
यःस्मरेत्पुण्डरीकाक्षं सबाह्याभ्यंन्तरः शुचिः ।

प्रथम संकल्प कर पूरब मुह कुशासन पर बैठकर जनेऊ बायें तरफ कर आचमन करै । और ऊपर के मंत्र को पढ़कर जल अपने ऊपर छिड़कै ।

द्वौदर्भौ दक्षिणे हस्ते सव्येत्रीण्यासनेतथा ।
पादमूले शिखायां च सकृद्यज्ञोपवीतके ।

फिर दो कुशा दहिने हाथ में लेकर उसी कुशासन पर बैठ जनेऊ बायें तरफ कर उसी कुशा से पैर के तलुए के नीचे स्पर्श कर और उसी कुशा से शिखा में और जनेऊ में स्पर्श करै ।

संकल्प मंत्र ।

ॐ तत्सत् श्रीमद्भगवतो महापुरुषस्य विष्णो-
राज्ञया प्रवर्तमानस्याद्यब्रह्मणो द्वितीयपरार्द्धे

श्रीश्वेतवाराह कल्पे जम्बूद्वीपे भरतखंडे आर्यावर्तैकदेशांतरगते अमुकनाम्नि क्षेत्रे वैवस्वत मन्वंतरे अष्टाविंशतिमे युगे कलियुगे कलि प्रथमचरणे अमुकनद्या तीरे देवब्राह्मणनां सन्निधौ अमुकशाके अमुक नाम्नि संवत्सरे अमुकायने अमुकगोले अमुकर्तौ मासानामुत्तमे महामांगल्यप्रदे अमुकमासे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकवासरे अमुकनक्षत्र योग करण लग्न मुहूर्तान्वितायां अमुकाऽमुकराशिवेलायां एवं गुणविशिष्टायां पुण्यतिथौ अमुक गोत्रोऽमुकनामाहं ममोपातक दुरितक्षयद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं देवर्षिपितृतर्पणं करिष्ये ।

ॐ ब्रह्मादयो देवा आगच्छन्तु गृह्णन्त्वेतान् जलाञ्जलीनित्यावाह्य देवतीर्थेन अक्षतोदकेनैकैकांजलिनातर्पयेत् ।

ऊपर के मंत्रों से ब्रह्मादिक देवताओं का आवाहन करै अर्थात् हाथ में जल लेकर और उसमें अक्षत छोड़कर आवाहन करै और नीचे के मंत्र से हरवार तर्पण जल अक्षत लेकर करै ।

ब्रह्मास्तृप्यताम्, विष्णुस्तृप्यताम्, रुद्रस्तृप्यताम् प्रजापतयस्तृप्यन्ताम्, देवास्तृप्यन्ताम्, छन्दांसि-तृप्यन्ताम्, ऋषयस्तृप्यन्ताम्, वेदास्तृप्यन्ताम्, पुराणाचार्य्यास्तृप्यन्ताम्, गन्धर्व्वास्तृप्यन्ताम्, इतराचार्य्यास्तृप्यन्ताम्, संवत्सरः सावयवास्तृ-प्यन्ताम्, देव्यास्तृप्यन्ताम्, अप्सरसस्तृप्यन्ताम्, देवानुगास्तृप्यन्ताम्, नागास्तृप्यन्ताम्, सागरा-स्तृप्यन्ताम्, पर्व्वतास्तृप्यन्ताम्, सरितस्तृप्यन्ताम् मनुष्यास्तृप्यन्ताम्, यक्षास्तृप्यन्ताम्, रक्षांसि-तृप्यन्ताम्, पिशाचास्तृप्यन्ताम् सुपर्णास्तृप्य-न्ताम्, भूतानिस्तृप्यन्ताम्, पशवस्तृप्यन्ताम्, वनस्पतयस्तृप्यन्ताम्, औषधयस्तृप्यन्ताम्, भूत-ग्रामश्चतुर्विधस्तृप्यन्ताम्, इतियवोदकेनैकैकम-ञ्जलिं देवतीर्थेनदद्यात।

अर्थात् दोनों हाथ से जल लेकर अपने सामने हर मंत्र को पढ़कर देवै इसको देवतीर्थ कहते हैं।

ततः (इसी तरह) मरीचिस्तृप्यताम्, अत्रिस्तृप्यताम्, अंगिरास्तृप्यताम्, पुलस्त्यस्तृप्य-

ताम्, पुलहस्तृप्यताम्, क्रतुस्तृप्यताम्, प्रचेतास्तृप्यताम्, वसिष्ठस्तृप्यताम्, भृगुस्तृप्यताम्, नारदस्तृप्यताम्, देववत ।

अर्थात् पहिले की तरह जल प्रदान करै ।

ततः उत्तराभिमुखो निवीतो प्रजापत्येन तीर्थेनाञ्जलिद्वयेन तर्प्पयेत् ।

अर्थात् दोनों अञ्जुली में जल लेकर उत्तर मुँह होकर उस जल में अक्षत डालकर निम्न लिखित मन्त्रों से ऋषि तर्पण करै और उस अञ्जुली के जल को अपने तरफ उलटा छोड़ता जावै इसको तीर्थ अञ्जुली कहते हैं ।

सनकादयः सप्तमनुष्या आगच्छन्तुगृह्णन्त्वेताञ्जलाञ्जलीन ।

इस मंत्र से जल औ अक्षत लेकर आवाहन करै ।

सनकस्तृप्यताम् सनन्दनस्तृप्यताम् सनातनस्तृप्यताम् कपिलस्तृप्यताम् आसुरिस्तृप्यताम् वोढुस्तृप्यताम् पञ्चशिखस्तृप्यताम् ।

ततोऽपसव्यम तिलमिश्रितंजलंगृहित्वादक्षिणाभिमुखः पातितवामजानुर्जलाञ्जलित्रयेण पितृतीर्थेन तर्प्पयेत ।

जनेऊ दहिने तरफ करके तिल और जल मिलाकर दक्षिण तरफ मुँहकर बायें पैर को मोड़ के दोनों हाथ में जल लेकर दहिने अंगूठे के बल से हर मन्त्र नीचे लिखे हुये को पढ़कर तर्पण करना चाहिये ।

कव्यवाड़नलादयो दिव्यपितर आगच्छन्तु गृह्णन्त्वेताञ्जलाञ्जलीन् ।

यह आवाहन मंत्र दिव्य पितर का है ।

काव्यवाड़नलस्तृप्यतामिदंजलंतस्मैस्वधा ।
सोमस्तृप्यतामिदं जलं तस्मै स्वधा ।
यमस्तृप्यतामिदं जलं तस्मै स्वधा ।
अर्यमातृप्यतामिदं जलं तस्मै स्वधा ।
अग्निष्वात्तास्तृप्यन्तामिदं जलंतेभ्यःस्वधा ।
सोमपास्तृप्यन्तामिदं जलं तेभ्यः स्वधा ।
बर्हिषदस्तृप्यन्तामिदं जलं तेभ्यः स्वधा ।

ततो यमादि चतुर्दशमूर्तय आगच्छन्तुगृह्णन्त्वेताञ्जलाञ्जलीन् । यमायनमः धर्म्मराजायनमः मृत्यवेनमः अन्तकायनमः वैवस्वतायनमः कालायनमः सर्वभूतक्षयायनमः औदुम्बरायनमः

दध्नायनमः नीलायनमः परमेष्ठिनेनमः वृकोद-
रायनमः चित्रायनमः चित्रगुप्तायनमः ।

पितृतपर्णाविधि ।

इहागच्छन्तुमे पितर इदं गृह्णन्तुमेजलम् ।

अमुकगोत्रः अस्मत्पिताऽमुकनामा वसुस्व-
रूपस्तृप्यतामिदं जलंतस्मैस्वधा ।

अमुकगोत्रोऽस्मत्पितामहोऽमुकनामारुद्रस्व-
रूपस्तृप्यतामिदं जलं तस्मै स्वधा ।

अमुकगोत्रः अस्मत्प्रपितामहोऽमुकनामा-
दित्यस्वरूपस्तृप्यतामिदं जलं तस्मै स्वधा ।

अमुक गोत्रा अस्मन्माताऽमुकदेवीतृप्य-
तामिदं जलं तस्मै स्वधा ।

अमुकगोत्राअस्मत्पितामही अमुकीदेवी-
तृप्यतामिदं जलं तस्मैस्वधा ।

अमुक गोत्रा अस्मत्प्रपितामही अमुकी देवी
तृप्यतामिदं जलं तस्यैस्वधा ।

अमुक गोत्रोऽस्मत्मातामहोमुकनामावसुस्व-

रूपस्तृप्यतामिदं जलन्तस्मैस्वधा ।

अमुक गोत्रोऽस्मत्प्रमातामहोऽमुकनामारुद्र-स्वरूपस्तृप्यतामिदं जलं तस्मैस्वधा ।

अमुक गोत्रोऽस्मद्वृद्धप्रमातामहोमुकनामा आदित्यस्वरूपस्तृप्यतामिदं जलं तस्मैस्वधा ।

अमुकगोत्रा अस्मत्मातामही अमुकी देवी तृप्यतामिदंजलं तस्यैस्वधा ॥

अमुकगोत्रा अस्मत्प्रमातामही अमुकी देवी तृप्यतामिदंजलं तस्यैस्वधा ॥

अमुकगोत्रास्मद्वृद्धप्रमातामही अमुकी देवी तृप्यतामिदंजलं तस्यैस्वधा ॥

ततः आचार्य्यादीन्नामगोत्राकारैस्तर्प्पयेत ॥

ततःयेबान्धवाबान्धवायेयेऽन्यजन्मनिबान्धवाः ।
ते सर्व्वेतृप्तिमायन्तुयेऽस्मत्तोयाभिकाङ्क्षिणः ।
ये मे कुलेलुप्तपिण्डाःपुत्रदारविवर्जिताः ।
तृप्यन्तु पितरः सर्व्वे मातृमातामहादयः ।

अतीतकुलकोटीनांसप्तद्वीपनिवासिनाम् ।
आब्रह्मभुवनाल्लोकांदिदमस्तुतिलोदकं ।

इति मंत्रैः पृथक्सतिलमुदकंदद्यात् ततः ।

येचास्माकंकुले जाता अपुत्रा गोत्रिणो मृताः ।
तेपिबन्तुमयादत्तं वस्त्रनिष्पीड़नोदकं । इति

वस्त्रं निष्पीडच सव्येनाचम्यसूर्यादिभ्योऽर्घ्यं दद्यात् । एहि सूर्य्यसहस्रांशोतेजोराशेजगत्पते । अनुकम्पयमां भक्त्यागृहाणार्घ्यंनमोऽस्तुते । ब्रह्मा मुरारिस्त्रिपुरान्तकारिर्भानुश्शशी भूमिसुतोबुधश्च ॥ गुरुश्चशुक्रः शनिराहुकेतवस्सर्व्वेग्रहाश्शान्ति-करा भवन्तु ॥

इति देवर्षिपित्रतर्पणं समाप्तम् ॥

अर्थात् अपने कुलपित्रों को जल पित्र तर्पण जहां से प्रारंभ हुआ है (आब्रह्म भुवनाल्लोकांदिदमस्तुतिलोदकम्) यहांतक तिल और जल लेकर तर्पण करे ॥

इसके वाद के मंत्र से अपने अंगौछे को जल में वोर के निचौड़ देवै ॥ अर्थात् (येचास्माकं कुले इत्यादि)

इसके बाद फिर जनेऊ बायें तरफ करके आचमन करे

टिपणी—जिनके माता पिता जीवित हों उनको पित्र तर्पण न न चाहिये ।

और सूर्य्य को अर्घ इस मंत्र से देवै (एहि सूर्य्य सहस्रांशो तेजोराशे जगत्पते । अनुकम्पयामांभक्त्या गृहाणार्घ्यं नमोस्तुते) इसके बाद नवग्रह की स्तुति करै ॥

॥ अथ गोग्रास ॥

सुरभिर्माता सुरभिः पिता सुरभिः पितृतारिणी ।
गोग्रासं च मया दत्तं सुरभेप्रतिगृह्यताम् ॥
हन्तकारः हन्तकारं मयादत्तंपितृनुद्दिश्यहेतवे ।
गृहाणत्वंकृपांकृत्वा क्षेमायुष्यंकरोतुमे ।

इस मंत्रसे गोग्रास देवै ॥

॥ अथातिथिपूजनम् ॥

अतिथेर्दर्शनं पुण्यं विष्णुमूर्तिर्विराजते ।
पितृनुद्दिश्यदीयन्ते पितृ देवे यथार्पणात् ॥
असव्यम् ।
यमोसियमदूतोसि वायसोसिमहाबल ।
अहोरात्रकृतंपापंबलिंभक्षन्तु वायसाः ॥
श्वानबलिः ।
श्वानमार्ज्जार कीटादिबलिभुग्भ्यश्चदीयताम् ।
ममक्षेमाय चारोग्यंरक्षरक्षकुलंमम ॥

समाप्तम् ॥

द्वितीयोऽध्यायः

अथर्व संहिता अ० ६. सूक्त ५२ काण्ड १९

कामसूक्तम्

तत्रप्रथम

कामस्तदग्रे समवर्तत मनसो रेतः प्रथमं यदासीत् ।
स काम कामेन बृहता सयोनी रायस्पोषं यजमानाय धेहि ॥ १ ॥

भावार्थ

इस सूक्त में कामना की व्याख्या की गई है । प्रलय काल में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के प्राणी समूह की वासनाएँ अंकुर रूप से माया वा प्रकृति में लीन हो जाती हैं । और माया वा प्रकृती पुरुष रूपी परब्रह्म परमात्मा के ज्योति स्वरूप में लीन हो जाती है । जगत के सम्पूर्ण अवयव अर्थात् पंच तत्व आदि जिनका प्रकाश प्रकृति वा माया से हुआ था प्रलयकाल में सिमट कर उसी माया में लीन हो जाते हैं उस समय एकोब्रह्म द्वितीय नास्तिका दृश्य दिखलाई पड़ता है । इसी लिये शास्त्रों में लिखा है कि:—

ब्रह्मवाऽइदमग्र आसीत । [शतपथ ब्राह्मण]

जब प्रलय कालका अन्त होजाता है और परमात्मा पुनः सृष्टि करने की इच्छा करता है तो उस समय उसके अन्तः करण में इस बात की कामना उत्पन्न होती है कि:—

" एको हम् बहुस्यामि प्रजारुपेण तत्परः " ॥

अर्थात् मैं एक से अनेक हो जाऊँ । इस विषय में ऐतरेयोपनिषद् का यह वचन है:—

ॐ आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत ।
नान्यत्किञ्चन मिषत् ।
सईक्षत लोकान् नु सृजा इति ॥ १ ॥

इस दृष्टान्त से सिद्धान्त यह निकलता है कि परमात्मा के अन्तःकरण से अंकुर रूपी प्राणियों की शेष वासनायें जो माया में प्रलय काल के आदि में लीन हो गईं थीं पुनः परमात्मा के इच्छा रूपी माया से प्रगट हुईं । अथवा परमात्मा के अन्तःकरण के सम्बन्ध से जो सम्पूर्ण प्राणियों के अन्तः करण का समूह है जिसके प्ररणा से आत्मा गुणों को धारण करता है उस परमात्मा के अन्तःकरण मे सृष्टि करने की कामना का प्रकाश हुआ । उसी सम्बंध से प्रपंच रूपी बीज रेत भाव से जो सम्पूर्ण प्राणियों के अन्तःकरण में प्रलय के आदि समय में लीन हुआ था । सृष्टि के समय मायाद्वारा प्रगट होगया । वह प्राणी समूह के सुखादि फल भोगने की कांक्षाएँ रूपी बीज जो सर्व जगत का साक्षी भूत था कर्माध्यक्ष परमात्मा के अन्तःकरण वा मन से उत्पन्न वा प्रगट हुआ । उन्ही कामनाओं को भोगाने के अभिप्राय से परमात्मा ने पुनः जगत की रचना की । उस परमात्मा की कामना यह थी कि मैं एक से अनेक होजाऊँ ।

द्वितीया ।

त्वं काम सहसासि प्रतिष्ठितो विभुर्विभावा सख आ सखीयते ।
त्वमुग्रः पृतनासु सासहिः सह ओजो यजमानाय धेहि ॥ २ ॥

भावार्थ ।

हे काम तुझको परमात्मा ने अपूर्व शक्ति दी है इसकारण से तेरी बहुत बड़ी प्रतिष्ठा है । सम्पूर्ण प्रकार की विषय सम्बंधी विभूतियां अर्थात रिद्धी सिद्धी आदि विशेषरूप से तुझीमें व्याप्त हैं और तू इससे परिपूर्ण है । इसी कारण से तू दीप्यमान हो रहा है । हे सखे मैं तुमसे अपनी कामना रूपी अभिलाषाएं सखित्व भाव से पूर्ण किये जाने के लिये प्रार्थी हूं । और इसी कारण से तुझसे प्रेम रखता हूं । तू समस्त कामनाओं का समूह वा कोश है इसी कारण से तुझै सदैव मित्रभाव से स्मर्ण किया करता हूं । और तेरी सहायता चाहता रहता हूं कि इस यजमान को जो कामसूक्तद्वारा तेरी उपासना करके यज्ञ मे आहुति दियाकरता है उसको वल और धन प्रदान करो जिसमें आपका उपासक यजमान शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर सकै ।

इसी इच्छा वा कामना रूपी तप करते ही प्रकृति वा माया सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को तैयार करादिया । हे कामः (कामना) तुझको परमात्मा ने सर्व जगत उत्पन्न करने के निमित्त उत्पन्न किया है इसी कारण से देशकाल वस्तु परिच्छेद रहित पर-

मात्मा ने तुझको महतपद प्रदान किया है। हे काम तुझको यज्ञ में आहुति इसी कारण से दीजाती है कि तुझसे कामना करनेवाले यजमान जो धन, बल आदि समृद्धि प्रदान कर। कामार्थी पुरुषोंको उचित है कि यदि उनको किसी संसारिक विषय की इच्छा हो तो अपनी कामनाएं पूर्ति किये जानेके हेतु अग्नि में इसी कामसूक्त द्वारा आहुति देवैं और इसीसूक्त की उपासना करैं तो परमात्मा उनके सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करैगा।

तृतीया ।

दूरश्चकमानाय प्रति पाणायाक्षये ।
आस्मा अशृण्वन्नाशाः कामेनाजयनन्त्स्वः॥३॥

भावार्थ ।

हे काम (कामना) तेरा पूर्ण होना अथवा मनोवांछित फल प्राप्त होना अतिदुर्लभ है । इसी कारण से तुझ से प्रार्थना करता हूं कि इस अपने स्तुति करने वाले यजमान की सम्पूर्ण कामनाएं जिस कांक्षासे तेरी उपासना करते हैं मनो वांछित फल प्रदान कर । तू मनोवांछित फल प्रदान करने में समर्थ है और तेरी कीर्ति सम्पूर्ण दिशामें व्याप्त होरही है । तेरी कीर्ति केवल मैंने सुनाही नहीं है किन्तु तू कामनाओं की पूर्ति भी करता है । अतएव तुझसे प्रार्थना है कि इस अपने प्रार्थी के कामनाओं को पूर्ण करके सुखप्रदान कीजिये ।

चतुर्थी

कामेन मा काम आगन् हृदयाद्धृदयं परि ।
यद मीषामदो मनस्तदैतूप मामिह ॥ ४ ॥

भावार्थ

हे काम मेरी इच्छा रूपी विषयों के फल स्वरूप में तू आ और मेरे कामनाओं की पूर्ति कर क्योंकि तेरी स्थापना मेरे मन में हो चुकी है। जगत की सृष्टि करने के पूर्व परमात्मा ने तुझको उत्पन्न किया है। तेरी उत्पत्ति परब्रह्म परमात्मा, विराट पुरुष के हृदय से होने के कारण तू समस्त ब्रह्माण्ड के प्राणधारियों के मन में व्याप्त हो रही है। इसी कारण से तू मेरे हृदय में अभिलाषा अथवा मनोवांछित फल प्राप्त होने की कामना रूप से स्थित है। अतएव तुझ से प्रार्थना करता हूँ कि मेरे सम्पूर्ण कामनाओं को पूरा कर।

पञ्चमी

यत्कांम कामायंमाना इदं कृण्मसिं ते हविः। तन्नः सर्वं समृंध्यतामथैतस्यं हविषोंवीहि-स्वाहां॥ ५॥

भावार्थ

हे काम मैं अपने कामनाओं के पूर्ण होने के अभिप्राय से तेरे प्रसन्नार्थ अग्निहोत्रादि करके तेरे नाम से आहुति अग्नि वा यज्ञकुण्ड में देता हूं और इस मंत्र को उच्चारण करता हूँ (हविषो भागं वा वीहि भक्षय स्वाहा इदं हविः सुहुतम् अस्तु) अर्थात् यह हवि आप को मैं देता हूँ आप इसको भोजन करें। इस हविभाग (खाद्य) पदार्थ के भोजन करने से आप का तेज और अधिक होगा आप को इस हवि देने के पुरसकार में आप से प्रार्थना करता हूं कि आप मेरे कामनाओं को पूर्ण कीजिये।

ऋग्वेद मंडल १०, अध्याय ८ सूक्त ९० मंत्र १–१६
(१०–७–६)

तृतीयोऽध्यायः ।

पुरुषसूक्तम्

(१)

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलं ॥ १ ॥

भावार्थ

इस सूक्त में परब्रह्म परमात्मा के स्वरूप की कल्पना की गई है । उस परमात्मा को (सहस्रशीर्षा) इसकारण से कहते हैं कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के प्राणी समूह का शिर उस परमात्मा के शिर के अन्तरगत है । अथवा उस परमात्मा को अनन्त शिर सम्पन्न इस कारण से कहते हैं कि वह बहुत बड़ा बुद्धिमान है ।

सहस्राक्ष=सहस्र नेत्र वाला उस परमात्मा को इस कारण से कहते हैं कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के प्राणी समूह उसके नेत्र के सामने हैं । अथवा वह परमात्मा सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के प्राणियों के कर्मों को निरीक्षण किया करता है ।

सहस्रपात्=सहस्र पैर वाला उस परमात्मा को इस कारण से कहते हैं कि वह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के प्राणियों के साथ है ।

वह परमात्मा सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के भीतर बाहर व्याप्त होकर प्राणीमात्र के नाभिकमल से दश अङ्गुल के दूरी पर हृदय कमल में स्थित है।

नोट—इसी भाव को धर्मराज (भगवान चित्रगुप्तजी) ने नचिकेता से कठोपनिषत में कहा है किः—

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो मध्य आत्मनि तिष्ठति।
ईशानो भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते। एतद्वै तत् ॥१२॥
अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो ज्योतिरिवाधूमकः।
ईशानो भूतभव्यस्य स एवाद्य स उ श्वः।
एतद्वैतत् ॥ १३ ॥ (कठोपनिषद् अध्याय २ वल्ली १)

वही अङ्गुष्ठमात्र पुरुष सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के प्राणीमात्र के हृदय कमलरूपी गुहा में विराजमान है। वही पुरुष भूत, भविष्यत, वर्तमान तीनो काल का ईश्वर है ॥ १२ ॥ वही अङ्गुष्ठ मात्र पुरुष चैतन्य स्वरूप अन्तःकरण रूपी गुहा में स्थित है जिसको योगियों ने अपने हृदय में धूम रहित अग्नि के प्रकाश के सदृश देखा है वही तीनों काल का ईश्वर है ॥ १३ ॥

अध्यात्म भाव

वह परब्रह्म परमात्मा जिस प्रकार से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के भीतर बाहर व्याप्त होकर भी सब से अलग है और प्राणियों के समस्त कर्मों को निरीक्षण किया करता है और शरीरान्त होने पर कर्मों का फल सम्पूर्ण प्राणियों को प्रदान किया करता है यही उसकी लीला है। उसी प्रकार से इस शरीररूपी ब्रह्माण्ड में व्याप्त होकर आत्मभाव से हृदयकमल में स्थित हो समस्त इन्द्रियों का प्रेरक होकर भी उसका कुछ भी सम्बन्ध इन्द्रियों

से नहीं है और न वह आत्मा इन्द्रियों को कर्मों का उत्तरदाई है इसी कारण से उस आत्मदेव को असंग शास्त्रों में वर्णन किया है यही उस आत्म देवकी महिमा है। जो अविवेकी पुरुष इन्द्रियों के कर्मों को आत्मदेव में आरोपण करते हैं वही वारंवार जन्म मरणरूपी दुःखको भोगते हैं। जो ज्ञानी पुरुष आत्मा को अजन्मा, असंग, अमर, इन्द्रियों के कर्मों से उसका कोई सम्बन्ध नहीं मानते वही अमरत्व भाव को प्राप्त होते हैं। उस परमात्मा की इच्छा (एकोऽहं वहुस्यामि प्रजारूपेण तत्परः) रूपी प्रकृति जो सत, रज, तम तीनों गुणों से युक्त थी प्रगट हुई और उससे पंचतत्वों का प्रकाश हुआ। उन्ही पंचतत्वों के गुणों से इन्द्रियां उत्पन्न हुई हैं। जिस प्रकार से प्रकृति अनेकानेक ब्रह्माण्डों की रचना करके अपनी कारीगरी ब्रह्म को दिखलाती है उसी प्रकार से प्रकृति से उत्पन्न हुई इन्द्रियां आत्मदेव को जो ब्रह्म का छायामात्र सिद्ध हो चुका है तीनों अवस्थाओं अर्थात् (जाग्रत, स्वप्न, और सुषुप्त अवस्था) में अपनी समस्त कारीगरी आत्मदेव को दिखलाती हैं। विवेकी पुरुष इन्द्रियों द्वारा परिपादित किये हुये कर्मों को आत्मदेव में आरोपित नहीं करते और न आत्मदेवको करता मानते हैं इसी कारण से वह कर्मके बंधन में नहीं पड़ते और अविवेकी पुरुष अपने को समस्त कर्मों का करता मानकर वारंवार जन्म, मरण रूप नाना प्रकार के दुःख को भोगते हैं।

(२)

पुरुषऽएवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यं ।
उतामृतत्वस्येशानोयदन्नेनातिरोहति ॥ २ ॥

भावार्थ

उस परमात्मा को वेदों में पुरुष के नाम से सम्बोधन किया है। वह परमात्मा वर्तमान जगत में है, भूतकाल में था और भविष्यकाल में रहैगा। वही परमात्मा प्राणियों को कर्मफल भोगाने के अभिप्राय से जगत की अवस्था को स्वीकार करता है इसी कारण से उपनिषदों में वर्णन किया गया है कि (सर्वं खल्विदं ब्रह्म) अर्थात् सम्पूर्ण जगत परमात्मा ही का स्वरूप है। वही परमात्मा सम्पूर्ण प्राणीमात्र का अधिपति और मुक्तिका दाता है इसी कारण से वह अमृत स्वरूप है।

अध्यात्म भाव

यदि मनुष्य निश्चय करके यह जानलेवै कि वही परमात्मा आत्मदेव होकर मेरे हृदय कमल रूपी गुहा अथवा अन्तःकरण में स्थित होकर अपना प्रकाश इन्द्रियों पर डालकर इन्द्रियों से कर्म करा रहा है इसी कारण से इन्द्रियां अपने कर्मों में प्रवृत्त हैं और आप सब से अलग है। ऐसा निश्चय करने वाला मनुष्य मुक्तस्वरूप हो जाता है। ऐसे ही अवस्था को प्राप्त होकर महात्मा लोग तदाकार होकर कह बैठते हैं कि (अहंब्रह्मास्मि)॥

(३)

एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पूरुषः।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।३।

भावार्थ

तीनो काल में रहने वाला जगत केवल उस परमात्मा

के महिमा मात्र से है और वह परमात्मा आप स्वयं इस महिमा वाले जगत से अतिशय अधिक है । तीनों काल में वर्त्तमान रहने वाले प्राणी समूह की उपमा उस परमात्मा के चौथे पैर से दीगई है । उस पमात्मा के तीनों शेष पैर विनाश रहित प्रकाशात्मक स्वयं अपने स्वरूप में स्थित हैं । उपमा के रूप में ब्रह्म के दो भेद हैः—(१) निर्गुण ब्रह्म (२) सगुण ब्रह्म ।

(१) निर्गुण ब्रह्म के चार पैर माने गये हैं । उनमें से सगुण ब्रह्म जिसको कारण शरीरी ब्रह्म के नाम से भी निरूपण करते हैं उसकी उपमा निर्गुण ब्रह्म के एक पैर से दीगई है । इसी कारुण शरीरी ब्रह्म को वेदां में आदि पुरुष, पुराणों में आदि नारायण के नाम से निरूपण किया हैं । इसी कारण शरीरी ब्रह्म को वैष्णव = विष्णु; शैव = सदाशिव; आदि नामों से निरूपण करते हैं । इसी कारण शरीरी ब्रह्म की प्रकृति जो तीनों गुणों से युक्त है (सत, रज, तन) इन्हीं गुणों से महा-काली, महालक्ष्मी, महासरस्वती की कल्पना देवीभागवत आदि ग्रन्थों में की गई है, इसी कारण से शाक्तगण उस ब्रह्म के प्रकृति वा शक्ति की उपासना आद्या भगवती के नाम से करते हैं, इसी कारण शरीरी ब्रह्म को विराट पुरुष, हिरण्य गर्भ, विधाता भी कहते हैं । इसी कारण शरीरी ब्रह्म को धर्म-राज चित्रगुप्त के नाम से भी निरूपण करते हैं जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के प्राणधारियों के हृदयाकाशरूपी गुहा में स्थित होकर शुभाशुभ कर्मों को निरीक्षण करके शरीरान्त होने पर न्याय किया करते हैं और कर्मों का फल प्रदान किया करते हैं । इसी कारण शरीरी ब्रह्म की वेदों में "सहस्त्र शीर्षा पुरुषः के नामसे व्याख्या की गई है ।

यह विराट् पुरुष निर्गुण ब्रह्म के एकही पैर से प्रगट होता है। निर्गुण ब्रह्म के चार पैर जो उपमा के स्वरूप में माने गये हैं वह यह हैं:—

(१) पूरब, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, चारदिशाएं जिसको प्रकाशवान के नाम से निरूपण करते हैं वह निर्गुण ब्रह्म का प्रथम पाद माना गया है।

(२) पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्युलोक, और समुद्र इन चार कलाओं को अनन्तवान कहते हैं, यह निर्गुण ब्रह्म का दूसरा पैर माना गया है।

(३) अग्नि, वायु, आदित्य, विद्युत यह चार कलायें जिसको ज्योतिष्मान कहते हैं। यह निर्गुण ब्रह्म का तीसरा पैर माना गया है।

उपर्युक्त तीनों पैर अमृत स्वरूप हैं और ब्रह्म के प्रकाश स्वरूप में स्थित हैं। "सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म"। इन्हीं तीनों कलाओं के प्रत्यक्ष रूप से आत्मा में बोध होजाने से मुक्ति होजाती है।

(४) प्राण, चक्षु, श्रोत्र, वाक, इन चारों कलाओं का नाम आयतनवान है। यह ब्रह्म का चौथा पैर है जिसके अन्तरगत अनन्त ब्रह्माण्ड हैं। यही सोलह (षोडश) कलाएं उपर्युक्त कारण शरीरी ब्रह्म के माने गये हैं।

पृथिवी की रचना करने के पश्चात उस परमात्माने (१) रस, (२) रक्त, (३) मांस, (४) मज्जा (५) अस्ति, (६) शुक्र (७) तेजा, सात धातुओं से शरीर की रचना की॥

अध्यात्म भाव

इस मंत्र-का अध्यात्म भाव यह है कि जो परब्रह्म परमात्मा सम्पूर्ण ब्रह्माण्डमें व्याप्त है वही मेरे कायारूपी ब्रह्माण्ड

में आत्मरूप से व्याप्त है, जिसके प्रकाश मात्र से समस्त इन्द्रियां अपने २ कर्मों में प्रवृत्त हैं, पर उस आत्मदेवका कोई सम्बंध न तो इन्द्रियों से है और न उनके शुभाशुभ कर्मों से है।

इसी भावका अपने अन्तःकरण में निश्चय होजाना और दृढ़ विश्वास होजानाही मुक्ति प्राप्त करना है।

(४)

त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः ।
ततो विष्वङ् व्यक्रामत्साशनानशनेऽअभि ॥४॥

भावार्थ

ऊपर वर्णन किये हुये निर्गुण ब्रह्म के तीनों पैरों का कुछ भी सम्बंध जगत से नहीं है। वह परमात्मा तो स्वयं इन गुणों और दाषों से पृथक होकर स्थित है। वह परमात्म (त्रिपाद पुरुष) गूढ़ रूप से (ऊर्ध्वः) अर्थात भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यं लाकादि में स्थित है। वह परमात्मा जगत के गुण और दोषों से पृथक होने पर भी सृष्टि और प्रलय वारंवार किया ही करता है। माया वा प्रकृति स्वयं जड़ है परमात्मा ही के प्रकाश के आधार पर वह सृष्टि की रचना करती है। उस परमात्मा का प्रकाश आत्मभाव से देव, पितर मनुष्य तिर्यग, स्थावर, जङ्गम आदि सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त होने पर भी स्वयं प्रकाश में स्थित है। जैसे सूर्य्य सर्व चक्षुओं का अधिष्ठाता देवता है जिससे सम्पूर्णप्राणियों के नेत्रों में प्रकाश पहुँचता है, यदि सूर्य्य का प्रकाश नेत्रों में न पहुँचे तो नेत्र स्वयं कुछ नहीं देख सकता और सूर्य्य स्वयं नेत्रों के गुण और दोषों

से पृथक हो अपने स्वयं प्रकाश में स्थित है। उसी प्रकार वह परमात्मा सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के प्राणधारियों तथा स्थावर, जङ्गमादि सम्पूर्ण जगत में व्याप्त होने पर भी जगत के गुण और दोषों से रहित हो स्वयं प्रकाश में स्थित है यही उसकी महिमा है।

अध्यात्म भाव

इस मंत्र का अध्यात्म भाव यह है कि आत्मदेव निर्गुण है। अन्तःकरणादि इन्द्रियों के साथ अविद्या के सम्बन्ध से प्रतीत होता है इसी कारण से इस आत्मदेव में सगुण भावकी कल्पना कीगई है। यदि गूढ़ दृष्टि से विचार किया जावै तो आत्मदेव समस्त इन्द्रियों में व्याप्त होने पर भी उन इन्द्रियों से कुछ भी सम्बंध नहीं रखता और स्वयं अपने सत्ता में स्थित है। इसी गूढ़ भाव को विद्वान लोग समझकर अपने हृदय से द्वन्दों तथा अनात्मिक बुद्धि को दूर करके निश्चयात्मिक बुद्धि द्वारा मनन, निदिध्यासनादि साधनाओं को करके भली भांति निश्चय कर अपने मन की चञ्चलता को स्थिर कर तदाकार हो मुक्तस्वरूप होजाते हैं।

(६)

तस्माद्विराळजायत विराजोऽअधिपूरुषः।
सजातोऽ अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमि मथो पुरः।५।

भाषार्थ

उस परमात्मा ने ब्रह्माण्ड देहधारी विराट पुरुष को उत्पन्न किया। यही विराट पुरुष ब्रम्हाण्ड का अधिपति

माना गया है । यही विराट पुरुष देव, मनुष्य, तिर्यग, आदि योनियों की रचना करके आप स्वयं जीव भाव से प्रवेश करके समस्त ब्रह्माण्ड का अधिपति हुआ । इसके पश्चात भूमि की की रचना की । इस सूक्त की व्याख्या उपनिषद् में इस भांति है:—

॥ ऐतरेयोपनिषद् प्रथम अध्याय प्रथम खण्डः ॥

ॐ॥ आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत् । नान्यत्किञ्चनामिषत्। सईक्षत् लोकान्नुसृजाइति ॥ १ ॥

स इमाँल्लोकानसृजत । अम्भो मरीचीर्मरमापोऽदोऽम्भः परेणदिवंद्यौः प्रतिष्ठाऽन्तरिक्षं मरीचयः । पृथिवी मरोया अधस्तात्ता आपः ॥ २ ॥

स ईक्षतेमे नु लोका लोकपालान्नु सृजा इति ।
सोऽद्भ्य एव पुरुषं समुद्धृत्यामूर्च्छयत ॥ ३ ॥

त मभ्यतपत्तस्याभितप्तस्यमुखं निरभिद्यत यथाऽण्डम् । मुखाद्वाचोऽग्निर्नासिके निरभिद्येतां नासिकाभ्याम्प्राणः । प्राणाद्वायुरक्षिणी निरभिद्येतां । अक्षिभ्याञ्चक्षुश्चक्षुष आदित्यः कर्णौ निरभिद्येतां।कर्णाभ्यांश्रोत्रं । श्रोत्रांदिशस्त्वङ् निरभिद्यत । त्वचोलोमानि । लोमभ्य ओषधि वनस्पतयो । हृदयं निरभिद्यत । हृदयान्मनो । मनसश्चन्द्रमा । नाभिर्निरभिद्यत । नाभ्या अपानोऽपानान्मृत्युः । शिश्नं निरभिद्यत । शिश्नातोरेतसः आपः ॥ ४ ॥

भावार्थ

सृष्टि के पूर्व एक आत्मा ही था । और कुछ भी नहीं था । उस परमात्मा ने अपनी इच्छा से प्राणियों को कर्म फल देने के लिये लोकान्तर को सृजा ॥ १ ॥

उस परमात्मा ने अपनी अनन्त शक्ति द्वारा इस जगत की रचना की। उस परमात्मा ने पंचतत्वों को उत्पन्न करके पंची करण द्वारा ब्रह्माण्ड की रचना की और उसके अन्तर गत स्वर्गलोक, जलादिलोक, अन्तरिक्षलोक, सूर्य्यलोक, महर-लोक, पृथिवी इत्यादि को रचना करके जल को उत्पन्न किया ॥ २ ॥

उस परमात्मा ने अपनी इच्छा से समस्त ब्रह्माण्डों तथा लोकों की रचना करके लोकपालों की भी रचना की जैसे ब्रह्मलोक के स्वामी ब्रह्मा; विष्णुलोक के स्वामी, विष्णु शिवलोक के स्वामी भगवान शङ्कर; सूर्य्यलोक के स्वामी सूर्य्य नारायण यमलोक के स्वामी धर्मराज चित्रगुप्त को उत्पन्न किया। उस परमात्मा ने पंचतत्वों के अवयवों को लेकर अपने अवययों की योजना करके मिश्रित किया और पंचो करण द्वारा ब्रह्माण्ड देहधारी पुरुषाकार विराट पुरुषको मूर्छित किया ॥ ३ ॥

इसके पश्चात् उस परमात्मा ने ज्ञानरूपी तप किया। पर-मात्मा के ज्ञान रूपी तप करते ही विराट रूपी पिण्ड के मुख में छिद्र हुआ। जिस प्रकार से पक्षी का अण्ड मुख खुल जाता है उसी प्रकार से विराट पुरुष का मुख खुल गया। मुख से वाक, वाक से अग्नि की उत्पत्ति हुई।

दोनों नासिकाओं में छिद्र हुआ। नासिका से प्राण, प्राण से वायु की उत्पत्ति हुई।

दोनो नेत्रों में छिद्र हुआ। नेत्रों से चक्षु, चक्षु से सूर्य्य उत्पन्न हुआ।

इसी प्रकार कर्णों में छिद्र हुआ। कर्ण से श्रोत्र, श्रोत्र से दिग देवता की उत्पत्ति हुई।

इसी भांति त्वचा भी भेदित हुआ। त्वचा से लोभ, लोभ से औषधि, औषधि से वनस्पति इत्यादि की उत्पत्ति हुई।

इसी भांति हृदय भी भेदित हुआ। हृदय से मन, मन से चन्द्रमा की उत्पत्ति हुई।

इसी भांति नाभि भी भेदको प्राप्त हुआ। नाभिसे अपान, अपान से मृत्यु की उत्पत्ति हुई।

इसी प्रकार शिश्न (लिङ्गेन्द्रिय) के भेदसे रेत, रेत से जल उत्पन्न हुआ।

इस मंत्र का सारांश यह है कि विराट पुरुष के सर्वाङ्गों से कर्मेन्द्रिय; ज्ञानेन्द्रिय; पंचप्राण, चारअन्तःकरण और इन समस्त इन्द्रियों के अभिमानी देवताओं की भी उत्पत्ति हुई।

(१) पंच तत्वः-(१) आकाश, (२) वायु, (३) अग्नि, (४) जल, (५) पृथिवी।

(२) पंचकर्मेन्द्रियः-(१) हस्त, (२) पाद (३) मुख, (४) गुदा (५) लिङ्ग।

(३) पंचज्ञानेन्द्रियः-(१) कर्ण, (२) त्वचा, (३) नेत्र, (४) नासिका (५) रसना,

(४) पंच प्राणः-(१) प्राण, (२) अपान, (३) व्यान, (४) समान (५) उदान।

(५) चार अन्तःकरणः-(१) मन, (२) बुद्धि (३) चित्त (४) अहङ्कार।

(६) आत्मा।

इन्हीं चौबीस तत्वों और एक आत्मा के आधार पर परमात्मा ने सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के प्राणधारियों की रचना किया करता है यही उसकी लीला है।

इन्ही चौबीस तत्वों और एक आत्मा के एकत्रित होने पर हिरण्यगर्भ वा सूत्रात्मा कहते हैं ।

इसी भांति परमात्मा ने विराट पुरुष को उत्पन्न किया जिनसे सृष्टि का विस्तार चला । इस विषय में मनु का यह वचन हैः-

ततः स्वयम्भूर्भगवान व्यक्तो व्यञ्जयन्निदम् ।
महाभूतादिवृत्तोजाः प्रादुरासीत्तमोनुदः (मनुःअ०-१-६)
यो सावतीन्द्रियग्राह्य सूक्ष्मोऽव्यक्तः सनातनः ।
सर्व्वभूतमयोऽचिन्त्यः स एव स्वयमुद्बभौ ॥ (अ-१-७)

सोभिध्याय शरीरात्स्वात्सिसृक्षुर्विविधाःप्रजाः ।
अपएव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत् ॥ (अ०-१-८)
तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम् ।
तस्मिन्जज्ञे स्वयम्ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः (अ०-१-९)

आपोनारा इतिप्रोक्ता आपो वै नरसूनवः ।
तायदस्यांयनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥ (अ० १-१०)
यत्तत्कारणमव्यक्तं नित्यंसदसदात्मकम् ।
तद्विसृष्टः स पुरुषो लोके ब्रह्मेति कीर्त्यते ॥ ११ ॥

तस्मिन्नण्डेस भगवानुषित्वा परिवत्सरम् ।
स्वयमेवात्मनोध्यानात्तदण्डमकरोद्द्विधा ॥ १२ ॥
ताभ्यां स शकलाभ्याञ्च दिवम्भूमिञ्च निर्ममे ।
मध्येव्योम दिशश्चाष्टावेषां स्थानञ्च शाश्वतम् ॥ १३ ॥

द्विधा कृत्वात्मनोदेहमर्द्धेन पुरुषोऽभवत् ।
अर्द्धेन नारी तस्यां स विराजमसृजत्प्रभुः ॥ (अ० १-३२)
तपस्तप्त्वाऽसृजद्यन्तु सस्वयं पुरुषोविराट् ।
तंमां वित्तास्य सर्व्वस्य स्रष्टारं द्विजसत्तमाः ॥ ३३ ॥

अहं प्रजाः सिसृक्षुस्तु तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम् ।
पतीन् प्रजानामसृजं महर्षीनादितो दश ॥ ३४ ॥

मरीचिमत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यम्पुलहं क्रतुम् ॥
प्राचेतसं वसिष्ठञ्च भृगुं नारदमेवच ॥ (मनुःअ-१-३५)

विराट् पुरुष के शरीरानुसार ही परमात्मा ने मनुष्य योनि को उत्पन्न किया है और प्रत्येक मनुष्य के अङ्गोंमें भिन्न २ देवताओं की चौकी है । इन्ही देवताओं के शक्त से वे सब अङ्ग (इन्द्रियां) अपने २ कर्मों में प्रवृत्त हैं । यदि किसी अङ्ग से किसी कारण वश किसी देवता की चौकी उठ जाती है तो वह अङ्ग ही बेकार हो जाता है । यही उस परमात्मा की लीला है ।

(१) नाम इन्द्रिय	इन्द्रियों का विषय	इन्द्रियों के अधिकारी देवताओं का नाम
(१) कान श्रोत्र	सुनना	दिग् देवता
(२) त्वचा	स्पर्श	वायु
(३) चक्षु	देखना	सूर्य्य
(४) जिह्वा	रस	वरुण
(५) नासिका	सूंघना	पृथिवी
(६) वाक्	बोलना	अग्नि
(७) पाद	चलना	विष्णु
(८) गुदा	मल त्याग करना	मृत्यु
(९) उपस्थ	मूत्र त्याग करना और मैथुन द्वारा सृष्टि उत्पन्नकरना	प्रजापति

(१०) मन	मनन करना	चन्द्रमा
(११) बुद्धि	निश्चय करना	ब्रह्मा
(१२) अहङ्कार	अभिमान करना	रुद्र
(१३) हस्त	लेना, देना	इन्द्र
(१४) चित्त	सोच विचार कर निर्णय करना	चित्र (चित्र-गुप्त)
(१५) तम	विकार्ता	ईश्वर

(६)

यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञ मतन्वत ।
वसन्तोऽअस्यासीदाज्यं ग्रीष्मऽइध्मःशरद्धविः ॥

भावार्थ

जिस समय विराट पुरुष ने अपने मानस यज्ञ से देवगणों को उत्पन्न किया था उस विराट पुरुष के प्रसन्नार्थ देवगणों ने भी अपने २ मानस यज्ञ में हवि दी। उस यज्ञ में वसन्त ऋतु की उपमा घृत से, ग्रीष्म ऋतु की समिधि से, तथा शरद्ऋतु की हविसे दी गई है। इस यज्ञ का अभिप्राय यह है कि समस्त देवगणों ने अपने २ मानस में विराट पुरुष के प्रसन्नार्थ हवि दी। जिस का फल उन देवगणों को यह प्राप्त हुआ कि वे देवगण भी अपनी २ सृष्टि करने में समर्थ हुये।

अध्यात्मभाव

इस मंत्र का अध्यात्मिक भाव यह है कि जिस प्रकार देव गण अपने मानसिक पूजा और मासिक यज्ञ द्वारा विराट पुरुषको प्रसन्न करके देवपद को प्राप्त हो अपनी २ सृष्टि करने में

समर्थ हुये हैं। उसी प्रकार यदि मनुष्य लोग मान्सिक पूजा आदि करके अपने हृदय से द्वैत भाव को दूरकर प्रकाशमान परमात्मा की उपासना कर अपने, हृदयाकाश में उस प्रकाश को प्रगट कर अपने स्वरूप में लीन हो जावें तो यही मुक्ति प्राप्त करना है।

(७)

तंयज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन्पुरुषं जात मंग्रतः।
तेनं देवाऽअयंजंत साध्याऽऋषंयश्चये ॥ ७ ॥

भावार्थ

जिस विराट पुरुष को देवगणों ने हवि दी थी उसी विराट पुरुष के मानस यज्ञ से देवगण और यज्ञ के साधन करने वाले महर्षिगण सृष्टि के पूर्व उत्पन्न हुये, जिसका फल देवगणों को यह प्राप्त हुआ कि वे देवगण और महर्षिगण अपनी २ सृष्टि करने में समर्थ हुये। वे देवगण और महर्षिगण कौन जिन्होंने विराट पुरुष को अपने २ मानस यज्ञ में हवि दी थी।

देवताओं का नाम

शतपथ ब्राह्मण

माध्यन्दिनीय १४. प्र ३, २, १८ पृष्ठ ७०२

(१) ब्रह्म वाऽइदम अग्र आसीत् (२२)

(२) तच्छ्रेयो रुपमत्यसृजत् क्षत्रं, यान्येतानि देवत्रा क्षत्राणीन्द्रोवरुणःसोमोरुद्रःपर्जन्यो यमो मृत्युरीशान इति ॥२३॥

(३) सनैव्यभ्यत् सविशम सृजति, यान्येतानि देव-जातानि गणश आख्यान्ते वसवोरुद्रा आदित्या विश्वे देवा-मरु इति ॥ २४ ॥

(४) सनैवव्यभ्यत् स शौद्रं वर्णमसृजत् पूषणमियं वैशेयं दिदं सर्वं पुष्यति यदिदं किञ्च ॥ २५ ॥

तदेतद् ब्रह्म क्षत्र विट शूद्रः । तदग्निनैव देवशु ब्रह्मा भवत ब्राह्मणो मनुष्यु, क्षत्रियेण क्षत्रियो वैश्येन वैश्यः शूद्रेण शूद्रस्तस्मादग्नानेव देवेषु लोकमिःच्छन्ते ब्राह्मणेमनुष्येष्वेताभ्याँ हिरुपाभ्यां ब्रह्माभवत् ॥

भावार्थ

(१) ब्रह्मा और अग्नि ब्राह्मण (२) इन्द्र, वरुण, सोम-रुद्र, पर्जन्य चतुर्दशयम, मृत्यु, ईशानादि क्षत्रिय देवता (३) वसु, एकादश रुद्र, द्वादश आदित्य, विश्वेदेवा, मरुदेवता वैश्य (४) पूषा शूद्रदेवता हुये, इन्हीं देवताओं की सन्तान ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रादि नामों से संसार में विख्यात है । मनुष्यों में ब्राह्मण ब्रह्मा के प्रतिनिधि हैं । इसी कारण से यज्ञादि के समय पर ब्रह्मा के प्रतिनिधि ब्राह्मण ही माने जाते हैं और उन्ही के द्वारा यज्ञ कराया जाता है । और यज्ञ के पश्चात ब्रह्मा का प्रतिनिधि समझ कर भोजनादि सत्कार द्वारा उनको सन्तुष्ट किया जाता है ।

ऋषियों का नाम

अग्नि वायु रविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम् ।
दुदोह यज्ञसिद्धयर्थमृग्यजुस्सामलक्षणम् ॥ (मनुःअ०१-२३)

श्री ब्रह्म देवने अग्नि, वायु, आदित्य से ऋग, यजु, साम वेदों को दूध की भांति दूहा ।

शतपक्ष ब्राह्मण

तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रयो वेदा अजायन्ताग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात्सामवेदः ॥

अग्नि, वायु, आदित्य को तत्व समझना भारी भूल है। विराट पुरुष ने इन्ही महर्षियों को उत्पन्न किया था इस विषय में श्री सायणाचार्य्य का यह मत है:-

" जीवो विशेषैरग्निवाय्वादित्यैर्वेदानामुत्पात्वात् " ।

अर्थात अग्नि, वायु, आदित्य, विशेष जीव हैं जिनसे वेद प्रगट हुआ ।

आदि में विराट पुरुष ने ऊपर लिखे हुए देवताओं और ऋषियों को उत्पन्न किया जिनसे सृष्टि का विस्तार बढ़ा ॥

(८)

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः संभृतं पृषदाज्यं ।
पशून्ताँश्चक्रे वायव्यानारण्यान्ग्राम्याश्चये ॥ ८ ॥

भावार्थ

जिस विराट पुरुष को देवताओं और ऋषियों ने अपने २ मानस यज्ञमे हवि दी थी। उस विराट पुरुष ने अपने मानस यज्ञ अथवा सङ्कल्प द्वारा दधी और घृत मिले हुये स्वादिष्ट पदार्थ के समान वनस्पति और फलदार वृक्षों को उत्पन्न किया। उसी विराट पुरुष ने पक्षियों अरण्य (जङ्गलों) के रहनेवाले हरिन आदि पशुओं तथा ग्राम आदि के रहनेवाले पशुओं अर्थात् गौआदि को उत्पन्न किया ।

४

(९)

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतऽ ऋचः सामानिजज्ञिरे ।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥९॥

भावार्थ

उसी यज्ञपुरुष विराट भगवान से ऋग्, साम, यजुः और अथर्ववेदों का प्रकाश हुआ जिसकी अग्नि, वायु आदित्य आदि महर्षियों ने धारणा की ।

(१०)

तस्मादश्वाऽअजायंत येके चों भया दंतः ।
गावोंह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाताऽअंजावयः॥१०॥

भावार्थ

उसी यज्ञ पुरुष (विराट) से घोड़े, गदहे, ऊपर नीचे दांतवाले पशुगण उत्पन्न हुये । और उसी पुरुष ने गाय, भैंस, बकरी आदि पशुओं को उत्पन्न किया ।

(११)

यत्पुरुषं व्यदंधुः कति धाव्यंकल्पयन् ।
मुखं किमस्य कौबाहूकाऽऊरु पादाऽउच्येते ॥११॥

भावार्थ

जिस विराट पुरुष ने अपने मानसिक यज्ञ अथवा सङ्कल्प द्वारा देवगणों और महर्षिगणों को उत्पन्न किया उस आदि पुरुष विराट भगवान् के स्वरूप की कल्पना किस भाँति की जावै। अथवा वह विराट पुरुषाकार आदिदेव कितने प्रकार से पूर्ण हुआ। इसी विषय में वेद भगवान् ने स्वयं प्रश्न किया है कि उसका मुख क्या है ? बाहु क्या है ? ऊरू (जंघा) और चरण क्या हैं ?

(१२)

ब्राह्मणोऽस्यमुखं मासीद्बाहू राजन्यः कृतः ।
ऊरूतदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोऽअजायत ॥१२॥

भावार्थ ।

उस विराट् पुरुष के मुख की उपमा ब्राह्मण से दी गई है। भुजा की क्षत्रिय से, ऊरू की वैश्य से, और पैर की शूद्र से।

इस वैदिक सूक्तका उपयोग दम्भी लोग मनुष्य कोटि मे करते हैं जो भारी भूल है। इसमंत्र का सम्बंध देवोत्पत्ति से है नकि मनुष्य से जो आगे के मंत्र से स्पष्ट होजाता है।

अध्यात्मिक भाव ।

विराट पुरुषने अपने अनुहार ही मनुष्य जाति को उत्पन्न किया है अतएव मनुष्य का मुख ब्राह्मण है, क्यों कि वेदाध्ययन अध्यापन आदि कर्म मुख द्वारा ही किया जाता है। भुजायें उसकी क्षत्रिय है, क्योंकि मनुष्य अपने सम्पूर्ण अङ्गों की रक्षा

भुजाएं द्वारा करता है । ऊरू अर्थात पेट से लेकर जंघेतक के भाग को वैश्य माना है । जो पदार्थ मनुष्य भोजन करता है, उदर रूपी वैश्य उसग्रास को जठराग्नि में पकाकर रससे रक्तादि बनाकर नियमानुसार सर्वाङ्गों में सञ्चालन करता है जिससे प्रत्येक अङ्गों में शक्ति पहुँचती है । मनुष्य का पैर शूद्र है जो सम्पूर्ण अङ्गों के बोझको सम्हाले है । यदि पैर बेकाम हो जावै तो सम्पूर्ण अङ्ग रहते हुये भी मनुष्य चल फिर नही सकाता और न कोई काम कर सकता है । परब्रह्म परमात्मा आप स्वयं जीवभाव से शरीररूपी ब्रह्माण्ड में अपने प्रकाश को फैला कर आप स्वयं नाभि से दश अङ्गुल के दूरी पर हृदय रूपी गुहा में स्थित हो इन्द्रियों के शुभाशुभ कर्मोंको निरीक्षण किया करता है। उसजीव अथवा आत्मदेवका कोई भी सम्बंध इन्द्रियों तथा इन्द्रियों के शुभाशु कर्मों से नहीं है । इस विषय में कठवल्ली उपनिषद् अध्याय २ वल्ली प्रथम में धर्मराज चित्रगुप्त ने नचिकेता से यह कहा है किः—

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषोमध्यआत्मानि तिष्ठति ।
ईशानोभूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते ॥
एतद्वैतत ॥ १२ ॥

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो ज्योतिरिवाधूमकः ।
ईशानो भूतभव्यस्य स एवाद्य स उश्वः ॥
एतद्वैतत ॥ १३ ॥

भावार्थ ।

अङ्गुष्ठमात्र पुरुष सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के प्राणीमात्र के हृदय रूपी गुहा मे स्थित है । वही पुरुष भूत, भविष्यत, वर्तमान तीनो काल का ईश्वर है । यही आत्माब्रह्म है ॥ १२ ॥

अङ्गुष्ठ मात्र पुरुष अन्तःकरणरूपी गुहा मे धूम्ररहित प्रकाश के समान योगियोंद्वारा निश्चय किया गया है वही तीनोकाल का ईश्वर है और वही ब्रह्म है ॥ १३ ॥

दूसरा भाव ।

इस मंत्र का दूसरा भाव यह है कि विराट पुरुष के मुख की उपमा ब्राह्मण देवता ब्रह्मा और अग्नि से दी गई है । अथवा विराट पुरुष के मुख से ब्राह्म और अग्नि की उत्पति हुई ।

और उसके हाथों की उपमा क्षत्रिय देवताओं से दीगई है अथवा विराट पुरुष के हाथों से क्षत्रिय देवता इन्द्र, वरुण कुवेर, आदित्य, धर्मराज चित्रगुप्त की उत्पत्ति हुई ।

उसके ऊरू से विश्वेदेवा, वसु और मरुत इत्यादि की उपमा दी गई है अथवा यह वैश्य देवता उसके ऊरू से उत्पन्न हुये । और विराट पुरुष के पैर की उपमा पृथिवी देवता से दी गई है ।

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्योऽअजायत ।
मुखादिंद्रश्चाग्निश्चं प्राणाद्वायुरजायत ॥१३॥

भावार्थ ।

उस विरट पुरुष के मनसे चन्द्रमा, चक्षु से सूर्य्य, मुखसे अग्नि, प्राणसे वायु देवता की उत्पत्ति हुई ।

अध्यात्मिक भाव ।

अध्यात्मिक भाव इस मंत्र का यह है कि विराट पुरुष की आज्ञानुसार यह समस्त देवगण अपनी २ दैवी शक्ति द्वारा प्रत्येक प्राणी समूह के इन्द्रियों मे अपना २ तेज प्रकाश कररहे हैं । इन्ही देवताओं की शक्तियों से इन्द्रियां अपने २ कर्मों में प्रवृत्त हैं । यदि यह देवगण अपनी २ शक्तियां हटालेवैं तो इद्रियां बेकाम होजाती हैं । इस मंत्र को मंत्र (५) के प्रसङ्ग के साथ मिलाकर पढ़ने से भाव स्पष्ट होजाता है ।

(१४)

नाभ्यांऽआसीदंतरिक्षं शीर्ष्णोंद्यौः समंवर्तत ।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथांलोकाँऽअंकल्पयन् ॥

भावार्थ ।

उस विराट पुरुष के नाभि से अन्तरिक्ष, शिरसे लोक, लोकान्तर आदि की उत्पत्ति हुई । और उसी विराट पुरुष के चरणों से पृथिवी और श्रोत्रों से सम्पूर्ण दिशाएं और भूः भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यं लोकादि प्रगट हुए ।

अध्यात्मिक भाव ।

इस मंत्र का अध्यात्मिक भाव यह है कि "ओ३म्" (ॐ) रूपी परमात्माका प्रकाश सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड मे जिसप्रकार से पड़ता है उसी प्रकार से इस शरीर रूपी ब्रह्माण्ड में भी पड़ता है । और ऊपर वर्णन किये हुये सातों लोक इस शरीर रूपी ब्रह्माण्ड में भी हैं जिसका योगियों ने निश्चय प्राणायाम आदि

योगबल द्वारा किया है इसी कारण से योगी अथवा प्राणायाम करनेवाले महात्मागण प्राणवायु को गुदा से खींचकर ब्राह्माण्ड तक लेजाकर समाधि लगाते हैं वह सातों लोकों का स्थान नीचे लिखा जाता है:—

नामस्थान	नामलोक	लोकों के स्वामी अथवा अभिमानी देवता
(१) गुदा	भूः	मृत्यु
(२) नाभि	भुवः	चन्द्रमा
(३) हृदय	स्वः	सूर्य्य
(४) कंठ	महः	मरुत
(५) नेत्र	जनः	रुद्र
(६) लिलाट	तपः	प्रकाश
(७) शिखा	सत्यं	तेज

इसका अभिप्राय यह है उसी (ॐ) रूपी परमात्मा का प्रकाश ऊपर वर्णन किये हुए समस्त स्थानरूपी लोकों में पड़ता है। इस बातका भ्रम यहां हो सकता है कि ऋचा (५) के प्रसंग में यह लिखा गया है मनका अधिकारी देवता चन्द्रमा है और ऊपर लिखा गया है कि नाभिका अर्थात् भुवः लोकका स्वामी चन्द्रमा है । दो स्थानों पर दो बातें क्यों लिखी गयीं हैं। इसका अभिप्राय है कि भूवः लोक का अधिकारी देवता चन्द्रमा है जिसका सम्राज्य नाभि से लेकर मन तक है। जब मन की चंचलता साधना आदि क्रियाओं से रुकती है तब हृदयाकाश अर्थात् मन, बुद्धि, अहङ्कार और चित्त के समुदाय जिसको अन्तःकरण कहते हैं उसमे पूर्णमा के चन्द्रमा के

समान प्रकाश फैलता है तब उसयोगी पुरुष का हृदय वा अन्तःकरण संकल्प, विकल्व आदि नाना प्रकार के बाधाओं से छुटकारा पा शान्तिमय होजाता है । शान्तिस्वरूप हो वह योगी पुरुष अपने स्वयं आत्मा का दर्शन लाभ करता है । वह आत्मा कहां है इस विशय में धर्मराज चित्रगुप्त ने नचिकेतासे यह कहा है:—

ऊर्ध्वंप्राणमुन्नयत्यपानं प्रत्यगस्यति ।
मध्ये वामनमासीनं विश्वेदेवा उपासते ॥

भावार्थ

हृदयान्तर्वर्ती आकाश के मध्य में अङ्गुष्टमात्र चैतन्य पुरुष स्थित हुआ अपनेसत्ता से प्राण वायु को ऊपर और अपान वायु को नीचे चला कर लीला करता है । उस अङ्गुष्ट मात्र वामन पुरुष को हिरण्य अर्थात् सोनहरे रङ्ग के प्रज्वलित स्वरूप की उपमा दी गई है, जिस प्रकार से सूर्य्यो-दय के समय लालिमा युक्त सूर्य्य रूपी गोलक में हिरण्य रूपी पुरुष की उपासना की जाती है उसी प्रकार से योगी गण अपने हृदयाकाश में अपने अन्तरात्मा का स्वरूप देख उसी आनन्द में मग्न हो कहते हैं कि " अहं ब्रह्मास्मी " ।

(१५)

सप्तास्यांसन्परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः ।
देवा यद्यज्ञं तन्वानाऽअबध्नन्पुरुषं पशुं ॥१५॥

भावार्थ

जिस समय देवगणों ने मानस यज्ञ किया था उस समय

सङ्कल्पित यज्ञ की गायत्री आदि सातो छन्द परिधि (आसन) हुई, और तीन वेदी अर्थात् ऐष्टिक, आवाहनीय और उत्तर वेदी भावित की गईं। बारह मास, पांच ऋतु तीन लोक, एक आदित्य एक्कीस इस यज्ञ में काष्टा रूप से भावित किये गये। अथवा गायत्री आदि सात छन्द अतिजगती आदि सात, और कृत्यादि सात यह समस्त इक्कीस छन्द उस यज्ञ के समिधा रूप हुये। उस यज्ञ के अवसरपर देवता ने अपना ध्यान, धारणा और समाधि में विराट पुरुष को अपने अटल विश्वास रूपी रज्जू से पशुवत बांध रक्खा अथवा निश्चल मन हो उसी स्वरूप में लवलीन हो गये।

दूसरा भाव

इस मंत्र का दूसरा भाव यह हो सकता है कि आदि सृष्टि के अवसर पर वर्तमान काल के समान यज्ञ की कोई सामग्री नहीं थी इसी कारण से उन देवगणों ने मानसिक यज्ञ किया। उस मानस यज्ञ के अवसर पर उन देवगणों ने अपने आत्म-देव रूपी यजमान को गायत्री आदि सातो छन्द रूपी आसन पर विठलाया अर्थात् उन्होंने इसी सातो छन्दों की कल्पना आसन से की और तीनो लोक की वेदी से, और इसी तीनों लोक रूपी वेदी पर तीन काल, भूत, भविष्यत, वर्तमान अथवा प्रातः मध्यान, सायंकाल की कल्पना लकड़ी से की अर्थात् तीनों लोक रूपी वेदी पर तीनों काल रूपी लकड़ी रख कर आदित्यरूपी अग्नि से उस वेदी पर विछे हुये लकड़ी को प्रज्वलित किया और द्वादस मास, षट् ऋतुओं, के शाकालाओं और घृत से उसी अग्नि में आहुती दी। और अपने अटल विश्वासरूपी रज्जू से विराट पुरुष रूपी आदि देवको अपने

अन्तःकरण में पशुवत बांध रक्खा। अथवा अपने ध्यान से उस आदि देव के स्वरूप को हटने न दिया।

तीसरा

तीसरा भाव इस मन्त्र का यह हो सकता है कि वैदिक ऋचाएँ जो गायत्री आदि सातो छन्द में हैं उन्हीं को देवताओं और वैदिक ऋषि अग्नि वायु आदित्य ने अध्ययन करके विराट पुरुष से उत्पन्न किये हुये स्वादिष्ट वनस्पति रूपी आदि खाद पदार्थों को अपने २ जठराग्नि रूपी हवन कुण्ड में ग्रास रूपी हवि देकर तथा यज्ञ करके आत्मदेव रूपी ब्रह्म अथवा विराट पुरुष को प्रसन्न करके अपने २ समाधि के लक्षको वेध डाला। उसी प्रकार यदि पुरुष अपने २ जठराग्निमें शुद्ध ग्रास

(१) ओं प्राणायनमःस्वहा। (२) ओं अपानायनमःस्वाहा। (३) ओं व्यानाय नमःस्वाहा। (४) ओं समानायनमःस्वाहा। (५) ओं उदानायनमःस्वाहा।

मन्त्रों को उच्चारण करके देवै तो इस आन्तरिक अग्निहोत्र से अन्तःकरण जिसमें ब्रह्म का प्रतिबिम्ब पड़ता है स्वच्छ हो सकता है और वह संयमी पुरुष अपने हृदयस्थ आत्मदेवका दर्शन स्वयं अपने वर्तमान ही शरीर में कर सकता है।

यज्ञेनं यज्ञ मंयजंत देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यांसन्। तेहनाकं महिमानंः सचंत यत्र पूर्वेसाध्याः संति देवाः॥ १६॥

भावार्थ

देवगण ने अपने २ मानस यज्ञ में यज्ञ पुरुष विराट स्वरूप परब्रह्म परमात्मा की पूजा की थी। क्योंकि उस यज्ञ पुरुष ने जगतरूपी विकार को धारण किया था।

उस विराट पुरुष की सोलह कलायें हैं जिनको तीसरे मंत्र के सम्बन्ध में दिखला चुके हैं, इसी कारण से वेद भगवान ने उस यज्ञ पुरुष विराट की स्तुति सोलह ऋचाओं में की है। जो कोई भाग्यवान पुरुष इन सोलहों ऋचाओं को नित्यप्रति अध्ययन करके मानसिक यज्ञ अथवा पूजन करता है तो उसके जन्म जन्मान्तर के शुभाशुभ कर्मों की गठरियां नाश हो जाती हैं और वह पुरुष "सायुज्य", सारूप "सालोक" रूपी मुक्ति अपने वासना के अनुसार प्राप्त कर सकता है। अतएव प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है कि पुरुषसूक्त द्वारा विराट पुरुष की उपासना करे।

अध्यात्मिक भाव

जिस प्रकार ब्रह्माण्डदेहधारी विराट पुरुष सम्पूर्ण जगत में व्याप्त होने पर भी जगत का विकार उसमें लेश मात्र भी नहीं लगता उसी प्रकार से शरीरस्थ आत्मा भी जो विराट पुरुष का स्वरूप ही सिद्ध हो चुका है सम्पूर्ण इन्द्रियों में अपना प्रकाश डालकर इन्द्रियों के शुभाशुभ कर्मों से कुछ भी सम्बन्ध नहीं रखता है। यदि मनुष्य स्वस्थचित्त हो अपने अन्तः करण रूपी गुहा में स्थित आत्मदेव रूपी विराट पुरुष की उपासना अद्वैत भाव से करके तदाकार हो जावे इसी पदको प्राप्त करना ही मुक्ति प्राप्त करना है। इस विषय में धर्मराज चित्रगुप्त ने नचिकेता से यह कहा है कि:—

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः । तंस्वाच्छरीरात्प्रवृहेन् मुञ्जादिवेषिकां धैर्येण । तंविद्याच्छुक्रममृतं तं विद्याच्छुक्रममृतमिति ॥ १७ ॥

भावार्थ ।

अंगुष्ठमात्र पुरुष सम्पूर्ण प्राणधारियों के हृदय में अन्तरात्मा रूप से विराजमान है इसलिये प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है कि जिस प्रकार से मूंज के छिलके अलग करके सरकण्डे को स्वच्छ करलेते हैं उसी प्रकार से अपने शरीरस्थ आत्मा को पंचकोशों से अलग करैः—

(१) मै मोटा मनुष्य हूँः—यह अन्नमय कोश है ।
(२) मै भूखा प्यासा हूँः—यह प्राणमय कोश है ।
(३) देह, धन, गृह, पुत्रादि मेरे हैंः—यह मनोमयकोश है ।
(४) मै ज्ञानी हूँ, मूर्ख हूँः—यह विज्ञानमय कोश है ।
(५) मै सुखी हूँ, दुःखी हूँः—यह आनन्दमय कोश है ।

जब मनुष्य साधना द्वारा अपने शरीरस्थ आत्मा को ऊपर वर्णन किये हुये पंच कोशों से अलग कर लेता है वह स्वयं ब्रह्मस्वरूप हो जाता है । इसी पदको प्राप्त करना मुक्ति प्राप्त करना है ॥

॥ ॐ शान्तिः, शान्तिः, शान्तिः ॥

चतुर्थोऽध्याय ।

अथ श्री सूक्तम् ।

ऋग्वेद म० ५-अनु: ६-१८ [परिशिष्टं]

हिरंण्यवर्णां हरिंणीं सुवर्णं रजतस्रजां ।
चन्द्रां हिरण्मंयीं लक्ष्मीं जातंवेदोमऽआंवह ॥
तांमऽआवंहजातवेदो लक्ष्मी मनंपगा मिनीं ।
यस्यां हिरंण्यं विंदेयं गामश्वं पुरुंषानहं ॥
अश्वपूर्वां रंथमध्यां हस्तिनादप्रमोदिनीं ।
श्रियं देवीमुपंह्वये श्रीर्मा देवी जुंषतां ॥
कांसोस्मितां हिरंण्यप्रकारांमाद्रां ज्वलंतींतृप्तां तर्पयंतीं। पद्मेस्थितां पद्मवंर्णांतामिहोपंह्वये श्रियं॥

चंद्रां प्रभासां यशसाज्वंलंतीं श्रियं लोके-देव जुंष्टा मुदारां । तांपद्मिनींमीं शरंणमहं प्रपंद्ये ऽलक्ष्मीर्में नश्यतांत्वां वृंणे ॥

आदित्यवर्णे तपसो धिजातो वनस्पतिस्तव वृत्तो-
थ बिल्वः। तस्य फलानि तपसानुदंतुमायां
तरायाश्च बाह्याऽअलक्ष्मीः ॥
उपैतुमां देवसखः कीर्तिश्च माणिनासह।
प्रादुर्भूतोस्मिराष्ट्रेस्मिन् कीर्तिमृद्धिंददातुमे ॥
क्षुत्पिपासामलांज्येष्ठामलक्ष्मीं नाशयाम्यहं।
अभूतिमसंमृद्धिं च सर्वां निर्णुदमे गृहात् ॥
गंधद्वारांदुराधर्षां नित्यं पुष्टांकरीषिणीं।
ईश्वरीं सर्वं भूतानां तामिहोपह्वये श्रियं ॥
मनसः काममाकूतंवाचः सत्यमशीमहि।
पशूनां रूपं मन्नस्यमयि श्रीः श्रयतां यशः ॥
कर्दमे न प्रजा भूतामयिसंभव कर्दम।
श्रियं वासयं मे कुले मातरं पद्ममालिनीं ॥
आपस्रजंतु स्निग्धानि चिक्लीं तव संमे गृहे।

निर्चं देवीं मातरं श्रियं वासयं मे कुले ॥

आर्द्रां पुष्कारिणीं पुष्टिं सुवर्णीं हेममालिनीं ।

सूर्यां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातं वेदोमऽआवह ॥

आर्द्रांयः करिणीं यष्टिं पिंगलां पद्म मालिनीं ।

चंद्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदोमऽआवह ॥

तांमऽआवह जातवेदो लक्ष्मीमनंपगामिनीं ।

यस्यां हिरंण्यं प्रभूतं गावों दास्योश्वान् विंदेयं पुरुंषानहं ॥

यः शुचिः प्रयंतो भूत्वा जुहुयांदाज्यमन्वंहं ।

सूक्तं पंचदशर्चं च श्रीकामंः सततं जंपेत् ॥

पद्मानने पंद्मऽऊरु पद्माक्षीं पद्म संभंवे ।

तन्में भजसिं पद्माक्षीयेन सौख्यं लभाम्यंहं ॥

अश्वदायीं गोदायी धनदांयी महाधंने ।

धनं मेजुषंतां देवि सर्व कांमांश्च देहिंमे ॥

पद्मानने पद्मविपद्मपत्रे पद्मप्रिये पद्म दलाय-
ताक्षी । विश्वं प्रिये विश्वमनोनुकले त्वत्पाद
पद्म मयि संनिधत्स्व ॥

पुत्र पौत्र धनं धान्यं हस्त्यश्वादि गवेरथं ।
प्रजानां भवसी माता ऽआयुष्मंतं करोतुमे ॥
धनं मग्निर्धनं वायुर्धनं सूर्यो धनंवसुः ।
धनमिंद्रो बृहस्पतिर्वरुणं धनमस्तुते ॥
वैनंतेयसोमं पिब सोमं पिबतुवृत्रहा ।
सोमंधनस्य सोमिनो मह्यं ददातु सोमिनः ॥
नक्रोधो न चमात्सर्यं न लोभोनाशुभामतिः ।
भवंति कृतपुण्यानां भक्तानां श्रीसूक्तं जपेत ॥

सरसिजनिलये सरोजहस्ते धवलतरांशुक
गंधमाल्यशोभे । भगवति हरिवल्लभे मनोज्ञे
त्रिभुवन भूतिकरि प्रसीदमह्यं ॥

विष्णुपत्नींक्षमां देवीं माधवीं माधवप्रियां ।
लक्ष्मींप्रियसखीं देवीं नमाम्यच्युतवल्लभां ॥

महालक्ष्मी चं विद्महें विष्णुपत्नी चं धीमहि । तन्नों लक्ष्मीः प्रचोदयांत ॥

श्रीवर्चस्व मायुष्य मारोंग्य मा विधाच्छोभं मानं महीयतें ।

धान्यंधनं पशुं बहु पुंत्रलाभं शत संवंत्सरं दीर्घमायुः ॥

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

पंचमोऽध्यायः

अथ रात्री सूक्तम्

ऋग्वेद मंडल १० अनु: १० अ० ८-अ ७ (१०-१०-१६)

रात्रीत्यष्टर्चस्य सूक्तस्य सौभरः कुशिको रात्रिर्गायत्री ।

॥ अत्र भारद्वाजीरात्री ऋषि का पाक्षिकी ॥

॥ ॐ श्री दुर्गा देव्यै नमः ॥

रात्री व्यख्य दायती पुरुत्रा देव्य १ क्षभिः ।
विश्वाऽअधि श्रियो धित ॥ १ ॥

ओर्वप्राऽअमर्त्या निवतो देव्यु १ द्वतः ।
ज्योतिषा बाधते तमः ॥ २ ॥

निरुस्व सार मस्कृतोष संदेव्या यती ।
अपे दुहासते तमः ॥ ३ ॥

सानोऽअद्य यस्या वयं नितेया मन्न विक्ष्महि ।

वृक्षे नवं सातिंवयः ॥ ४ ॥

निग्रामासोऽअविक्षतनिपद्वंतो निपाक्षिणः ॥

निश्ये नासं श्चिदार्थिनः ॥ ५ ॥

यावयां वृक्यं १ वृकं यवयस्तेन मूर्म्ये ॥

अथांनः सुतरां भव ॥ ६ ॥

उपंमा पेपिं शत्तमः कृष्णं व्यक्ति मस्थित ॥

उषंऽऋणे वंयातय ॥ ७ ॥

उपंते गाऽइवाकंरं वृणीष्व दुंहितर्दिवः ॥

रात्रिस्तोमंन जिग्युषें ॥ ८ ॥

॥ परिशिष्टं ॥

आरांत्रि पार्थिंवं रजः पितरंः प्रायुधामंभिः ॥

दिवःसदांसिबृहतीवितिष्ठसऽआत्वेषंवंर्ततेतमः।६।

येतें रात्रिनृचक्षसो युक्ता सों न वतिर्नवं ॥

अशीतिः संत्वष्टाऽउतोतें सप्त सप्ततीः ॥ १० ॥

रात्रीं प्रपद्ये जननीं सर्व भूत निवेशनीं ॥
भद्रां भगवतीं कृष्णां विश्वस्य जगतो निशा ॥ ११ ॥
संवेशिनीं संयमिनीं ग्रह नक्षत्र मालिनीं ॥
प्रपन्नो हं शिवां रात्रीं भद्रे पार मशी महि भद्रे
पार मशी मह्योंनमः ॥ १२ ॥
स्तोष्यामिप्रयतो देवीं शरण्यां बह्वृचप्रियां ।
सहस्र समितां दुर्गां जात वेदसे सुन वाम
सोमं ॥ १३ ॥
शांत्यर्थं तद्विजातीनां मृषिभिः सोम पाश्रिताः ।
ऋग्वेदेत्वं समुत्पन्ना रातीयतो निदंहाति
वेदः ॥ १४ ॥
योत्वां देवि प्रपद्यंति ब्रह्मणा हव्य वाहनीं ॥
अविद्या बहुविद्यां वासानः पर्षदति दुर्गाणि
विश्वा ॥ १५ ॥

येऽअग्निवर्णां शुभां सौम्यां कीर्तयिष्यंति ये द्विजाः
तां तारयति दुर्गाणि नावेव सिंधुं दुरितात्यग्निः १६
दुर्गेषु विषमे घोरे संग्रामे रिपु संकटे ।
अग्नि चोर निपातेषु दुष्ट ग्रहं निवारणे ॥१७॥
दुर्गेषु विषमेषुत्वं संग्रामेषुवनेषुच ॥
मोहयित्वा प्रपद्यंते तेषांमेऽअभयंकुरु तेषामेऽ-
अभयं कुरु ॥ १८ ॥
केशिनीं सर्वं भूतानां पंचमीं ति चनामंच ।
सामां समा निशा देवीं सर्वतः परि रक्षंतु
सर्वतः परिरक्षत्वोन्नमः ॥ १९ ॥
तामग्निवर्णां तपसा ज्वलंतींवैरोचनीं कर्म फलेषु
जुष्टां ॥ दुर्गां देवीं शरंण महं प्रपंद्ये सुतरांसित-
रसे नमः सुतरांसि तरसे नमः ॥ २० ॥
दुर्गा दुर्गेषु स्थानेषु शंनो देवीर भिष्टये ॥

यऽइमं दुर्गा स्तवं पुण्यं रात्रौ रात्रौ सदा पठेत्॥ २१॥

रात्रिः कुशिक सो भरों रात्रिस्तवो गायत्री ॥

रात्रीं सूक्तं जपेन्नित्यं तत्काल मुप पद्यंते ॥२२॥

उलूक यातुं शुशुलूकं यातुं जहिश्व यातु

मुतकोकंयातुं ॥ सुपर्ण यातुमुत गृध्रं यातुं

हृष दैव प्रमृण रक्षऽइंद्र ॥ २३ ॥

पिशंगं भृष्टिमं भृणां पिशाचिं मिंद्र संमृण। सर्वं

रक्षो निबर्हय ॥ २४ ॥

हिमस्यंत्वा जरायुणा शाले परिंय यामसि ॥

उत हृदोहिंनो धियोग्निर्ददातु भेषजं ॥ २५ ॥

शिशीत हृदोहिंनोधियोग्निर्ददातु भेषजं ॥

औत कामाग्निमंजनय दूर्वातः शिशु लागमत ॥२६

अजात पुत्रपत्तायां हृदयं मम दूयते ॥

विपुलं वनं बहा कांशं चरं जात वेदः कामाय॥२७॥

मांचरक्ष पुत्रांश्च शरंणा मभूत्तवं ॥
पिंगाक्ष लोहित ग्रीव कृष्ण वर्णा नमोस्तुंते॥२८॥
अस्मान्निबर्हरस्येनां सागरस्योर्मयो यंथा ॥
इंद्रः क्षत्रं ददातु वरुणमभिंषिं चतु ॥ २९ ॥
शत्रवो निधनं यांतु जयस्त्वं ब्रह्म तेजंसा ॥३०॥
कापिल जटीं सर्वं भक्षं चाग्निं प्रंत्यक्ष दैवंतं ॥वरुणंत्व
वशा म्यग्रे मम पुंत्रांश्च रक्षंतु मम पुंत्रांश्चरक्षत्वोन्नमः
साग्रं वर्ष शतं जीव पिब खादं च मोदंच ॥
दुःखितांश्चाद्विजांश्चैव प्रजां चं पशु पालंय ॥३२॥
यावंदादित्यस्तंपाति यावंद्भ्राजति चंद्रमाः ।
यावद्वायुः प्लंवायति तावंज्जीव जयां जय ॥३३॥
येन केन प्रकारेण कोहिनां मन जीवंति ॥
परेषा मुपंकारार्थं यज्जीवंति सजीवति ॥ ३४ ॥

एतां वैश्वा नरीं सर्व देवान्नमोस्तुंते ॥३५॥

न चोरभयंनचं सर्प भयं नचं व्याघ्र भयं नचं।

मृत्यु भयं ॥

यस्याप मृत्युर्नचं मृत्युः सर्वंलभते सर्वं जंयते॥३६॥

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

कर्नल विश्वनाथ उपाध्याय

नोटिस ।

(१)	चित्रगुप्तेश्वर पुराण	...	...	१)
(२)	चित्रवंशनिर्णय १ भाग	...	...	॥।)
(३)	चित्रवंशनिर्णय २ भाग	...	...	१)
(४)	हिन्दू सोशियालोजो	...	...	॥=)
(५)	यमद्वितीय माहात्म्य	...	...	।=)
(६)	चित्रवंशमार्त्तण्ड	...	...	॥)
(७)	धर्मराज चित्रगुप्त को चतुर्भुजी मूर्ति		...	=)
(८)	काश्मीर छटा (कर्नल विश्वनाथ उपाध्या कृत)			।)
(९)	चित्र सूक्तावली			।)
(१०)	ब्रह्म उपासना अर्थात द्विजातियों का नित्यकर्म			।–)

मिलने का पता–

मुः कामताप्रसाद श्रीवास्तव्य

C $\frac{3}{7}$ कालीमहल, काशी ।

मुद्रक—
बी. एल्. पावगी,
हितचिन्तक प्रेस, रामघाट, बनारस सिटी: ६८१५ a

पुस्तक लौटाने की तिथि अन्त में अङ्कित है। इस तिथि को पुस्तक न लौटाने पर दस नये पैसे प्रति पुस्तक अतिरिक्त दिनों का अर्थदण्ड आप को लगाया जायेगा।

५०००.११.१४।